UNIVERSAL LIBRARY

OU_180959

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H82/U66S Accession No G.H. 283

Author उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

Title स्वर्ग की झलक | 1950

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक—
नीलाभ प्रकाशन गृह
५ खुसरो बाग रोड
इलाहाबाद !

तीसरा संस्करण १९५०
मूल्य सजिल्द १॥।)
अजिल्द १।)

मुद्रक—
जॉब प्रिन्टर्स ९९ हिवेट रोड
प्रयाग

'स्वर्ग की झलक' देखने वालों के नाम !

ऊपर से सुदृढ़ तथा भव्य प्रासाद बनाने वाले,
ठहर और देख कि तेरे प्रासाद की नींव नीचे से
खिसकी जा रही है !

प्रथम संस्करण की भूमिका

दो वर्ष पहले * 'जय-पराजय' लिखते समय ही मैंने सोचा था कि इस तरह का शायद यह मेरा पहला और अन्तिम नाटक होगा और यद्यपि आज उसकी दूसरी आवृत्ति चार हज़ार † की हो रही है, और इस बीच में देश की सभी मुख्य-मुख्य पत्र-पत्रिकाओं ने विस्तृत समालोचनाएँ करते हुए उसका स्वागत किया है, तो भी आज वैसा नाटक लिखने को मेरा मन नहीं हुआ। इसका पहला कारण यह है कि जय-पराजय एक ऐतिहासिक नाटक है, और मेरे अपने विचार में आज हमें सामाजिक नाटकों की अधिक आवश्यकता है। ऐतिहासिक नाटकों का प्रचार सब देशों में प्रायः उस समय होता रहा, जब उनकी सामाजिक समस्याएँ इतनी विषम न थीं, या उन समस्याओं को समझने तथा उनका मनन करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी, या उनकी सामाजिक स्थिति इतनी दुखद थी कि उसमें भाग कर वे अपने उज्ज्वल-अतीत में कुछ क्षण के लिए जा बसना, उसके सुख-वैभव में अपने आपको विस्मृत कर देना ही श्रेयस्कर समझते थे। भारत में पिछला युग प्रायः ऐतिहासिक नाटकों का ही युग रहा है और इसका मूल कारण यही वर्तमान से भाग कर अतीत में बसने की प्रवृत्ति है।

बंगाल में स्व० द्विजेन्द्र लाल राय के मुग़ल तथा राजपूत सम्बन्धी नाटक, हिन्दी में स्व० प्रसाद तथा श्री उदयशंकर भट्ट के भारत के स्वर्ण-युग सम्बन्धी तथा पौराणिक नाटक और उर्दू में मैय्यद

---

* १९३७ ई०

† आज तक जय पराजय २० सहस्त्र के लगभग बिक चुका है।

इमत्याज़ अली ताज का प्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' सब इसी प्रवृत्ति के द्योतक हैं। ये सब कलाकार हमारे सामने उज्ज्वल अतीत को रख कर दुखी वर्तमान में हमें सान्त्वना देते हैं। पर आज हमारा वर्तमान इतना निराशा-पूर्ण नहीं, राजनैतिक क्षितिज भी अपेक्षाकृत साफ़ है और समाज की उन्नति के भी हम स्वप्न लेने लगे हैं। आज हमें मात्र-सान्त्वना नहीं चाहिए, हमें आलोचना की भी बड़ी आवश्यकता है। आज हम एक संक्रान्ति काल से गुज़र रहे हैं और अपने अतीत का गुण-गान करने के बदले हमारे लिए आवश्यक है कि हम अपने भविष्य की भी चिन्ता करें। समाज की कुरीतियों को दूर करके उसे स्वस्थ बनाते हुए उन्नति के पथ पर ले जायँ। साथ ही यह देखें कि एक अतिरेक से निकल कर वह दूसरे अतिरेक में तो नहीं जा पड़ता और इस लिए आवश्यक है कि हम समाज की विभिन्न समस्याओं को छूने वाली रचनाओं का सृजन करें—फिर चाहे वे कथाएँ हों, उपन्यास हों अथवा नाटक!

दूसरी बात यह भी थी कि जय-पराजय पुरानी शैली का नाटक था और इस लिए बहुत लम्बा था! मैंने उसे लिखते समय रंग-मंच का पूरा ध्यान रखा था और जैसा कि सम्पादक 'विशाल भारत' ने लिखा, वह खेला भी जा सकता है, पर यह मैं तब भी जानता था और अब भी जानता हूँ कि वह शायद ही कभी पूरे-का-पूरा खेला जाय। खेलने के लिए उसे काफ़ी संक्षिप्त करना होगा। और ऐसा मैंने भूमिका में लिखा भी था। आज के खेलने वाले नाटकों की सबसे बड़ी खूबी, उनका अपेक्षा-कृत छोटा होना है, पुराने समय में जीवन का संघर्ष इतना विषम न था और लोगों के पास समय भी यथेष्ट होता था। रात के ६ बजे से प्रातः

के तीन-तीन बजे तक नाटक खेले तथा देखे जाते थे, पर आज हमारे पास इतना समय नहीं कि हम एक रात जाग कर खराब करें और दूसरा दिन सो कर! हम चाहते हैं, कम-से-कम समय में हमारा अधिक से-अधिक मनोरंजन हो। सिनेमा इस आवश्यकता को पूरा करता है। यदि समय के साथ ही भारत में नाटक के कर्णधार इस बात का ध्यान रखते तो आज नाटक के मामले में भारत यों न पिछड़ जाता, क्योंकि रंग-मंच के सीमित होते हुए भी, इसकी अपील रजत पट से अधिक है। चित्रों की अपेक्षा हम सजीव व्यक्तियों के अभिनय में अधिक दिलचस्पी ले सकते हैं। पश्चिम ने इस बात का ध्यान रखा है और यही कारण है कि वहाँ रंग-मंच आज भी दर्शकों को सिनेमा से कम आकर्षित नहीं करता।

कला—

नाटक के संक्षिप्त होते ही उसकी कला भी बदल गई है। रंगमंच *illusion* (असत्य) तो है ही, पर आज का नाटककार उसे, जहाँ तक सम्भव हो, सत्य के समीप रखने का प्रयास करता है। वह पूरी-की-पूरी शताब्दी को दो घंटों के अन्दर ही दिखाने और ऐसे कृत्रिम दृश्य देने के विरुद्ध है, जो देखते ही असम्भव जान पड़ें। स्व० द्विजेन्द्रलाल राय का नाटक 'भीष्म' पितामह भीष्म के युवा काल से उनकी मृत्यु तक फैला हुआ है। उसमें पाँच अंक हैं। प्रत्येक अंक में आठ तक दृश्य हैं; स्व० प्रसाद के नाटक 'चन्द्र गुप्त' के एक अंक में १४ तक दृश्य हैं। आज के खेले जाने वाले नाटकों में ऐसा होना सम्भव नहीं।

नाटक के संक्षिप्त होने के साथ ही उसका उद्देश्य भी बदल गया है। पहला नाटक उपन्यास के समीप था, आज का कहानी के समीप है। पहले नाटक में हम समाज का पूरा चित्र खींच सकते थे,

व्यक्ति का पूर्ण चरित्र-चित्रण कर सकते थे, पर आज हम उसकी झांकी-मात्र दिखाते हैं और शेष दर्शक की कल्पना पर छोड़ देते हैं। इसके साथ ही जहाँ पहले के नाटकों में ऐसी बातें भी आ सकती थीं जिनका सम्बन्ध मुख्य कहानी के साथ अधिक न हो, अथवा उपन्यास की भांति जहाँ नाटक में एक साथ दो कथानक चल सकते थे, वहां आज के नाटकों में व्यर्थ का एक वाक्य भी असह्य है। नाटककार समय, स्थान और अभिनय के संकलन की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इसके साथ ही पुराने नाटकों की कृत्रिम बातें—व्यर्थ के गाने, स्वगत, टेबला आदि सब आज उड़ गये हैं और नाटक जीवन के अधिक समीप आगया है।

ज़रूरत

मासिक 'हंस' में मेरे एक लेख का उत्तर देते हुए श्री जैनेन्द्र ने लिखा था कि जब रंग-मंच ही न हो तो रंग-मंच के नाटक कैसे लिखे जायँ? तब मैंने उत्तर दिया था कि यदि आज लेखक रंग-मंच पर खेले जाने वाले नाटक लिखे तो कल रंग-मंच भी अपनी वर्षों की नींद से जाग उठेगा! वास्तव में दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। आज यदि विविध स्कूलों तथा कालेजों में नाटक-क्लब बन जायँ तो शायद खेलने के लिए उन्हें हिन्दी में नाटक ही न मिलें। आज भी* हमारे कालेजों में अंग्रेज़ी से अनूदित नाटक ही खेले जाते हैं। कारण यही है कि उन्हें अपनी भाषाओं में उत्तम नाटक नहीं मिलते। मेरा अपना विचार तथा अनुभव है कि रंग-मंच को स्फूर्ति प्रदान करने का सबसे अच्छा साधन यह है कि ऐसे नाटक अधिक संख्या में लिखे जायँ, जो रंग-मंच पर सुगमता से खेले जा सकें। गत-वर्ष मैंने 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी नाटक लिखा था जो इस अल्पकाल ही में सूरत, लाहौर तथा इलाहाबाद तीन जगह खेला गया। डा० रामकुमार वर्मा तथा श्री भगवतीचरण वर्मा के एकांकी भी सफलता पूर्ण खेले गये हैं।

*१९३९ में

'लक्ष्मी का स्वागत' की सफलता से प्रोत्साहित होकर मैंने यह अपेक्षाकृत लम्बा, चार अंक का नाटक लिखा है और इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि यह आसानी से खेला जा सके, इसे खेलने में व्यय अधिक न आय, और रंग-मंच में भी अधिक परिवनर्तन न करने पड़ें।

प्रस्तुत नाटक

'स्वर्ग की झलक' एक सामाजिक व्यंग है और क्योंकि यह आधुनिक शैली का है, (पात्रों के चरित्र की या उनके चरित्र के एक पक्ष ही की झाकी-मात्र दिखाता है।) इस लिए, इस विचार से कि इसके उद्देश्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम न पैदा हो जाय, मैं यहाँ दो एक बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ।

पहली बात नाटक के उद्देश्य के सम्बन्ध में है। हो सकता कि नाटक को सरसरी दृष्टि से पढ़ने वाला यह धारणा बना ले कि नाटक आधुनिक नारी, अथवा शिक्षित नारी, अथवा आधुनिक शिक्षा के विरुद्ध लिखा गया है। ऐसे पाठकों से मैं निवेदन करूँगा कि वे उसे फिर ध्यान से पढ़ें।

नाटक का उद्देश्य शिक्षा अथवा आधुनिक नारी के विरुद्ध न होकर, उस मनोवृत्ति के विरुद्ध होना है, जो हमारे यहाँ की अधिक शिक्षित लड़कियों में पैदा होती जा रही है कि वे सब की सब उदार विचारों के, शिक्षित और धनी पति चाहती हैं और अपना बाहर सँवारने के जोश में घर बिगाड़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि मैंने कहा, आज हम एक परिवर्तन-काल से गुजर रहे हैं, जिसमें शिक्षा के साथ बेकारी बढ़ती जाती है और जब हमारे युवक शिक्षित तो हो गये हैं पर अपने संस्कारों को पूर्ण रूप से बदल नहीं पाये। इसलिए आज प्रत्येक शिक्षित लड़की के लिए शिक्षित, पूर्ण रूप से आधुनिक और साथ ही धनी पति का मिलना कठिन है। औसत शिक्षित लड़की को

शिक्षित पति मिलता है तो उतना धनी नहीं होता कि उसकी आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके । तब यदि उसे विवाह करके सीधा साधा जीवन बिताना है तो उसे इस सीधे साधे जीवन पर नाक-भौं न चढ़ानी चाहिए ! उसे शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ इस जीवन की कठिनाइयों के लिए भी अपने आपको तैयार करना चाहिए । कम से कम उस समय तक के लिए जब तक कि भारत सुसम्पन्न नहीं हो जाता और औसत दर्जे के मध्यवर्गीय का रहन-सहन पर्याप्त रूप से ऊँचा नहीं उठ जाता । अथवा समाज की ऐसी व्यवस्था नहीं बन जाती जिसमें नारी पुरुष पर आश्रित न होकर आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो और वास्तव अर्थों में उसकी सहचरि बन जाय। चाहिए यह कि जहाँ शिक्षा पाकर नारी स्वाभिमान, आत्म-विश्वास, व्यापक ज्ञान, तथा समाज-सेवा की भावनाएँ पाय, वहाँ अपना संतुलन भी न खोये तभी समाज में स्वस्थता कायम रह सकेगी ।

दूसरी बात यह है कि इस नाटक में आधुनिक शिक्षित नारी के गुण-दोषों का विवेचन नहीं किया गया । उसमें बहुत से गुण हैं, पर वे इस नाटक की सीमा से बाहर हैं । नाटक छोटा है । आधुनिक है । जीवन की व्यापकता का यह दिग्दर्शन नहीं करा सकता । एक समस्या की झांकी-मात्र यह देता है और अपनी दृष्टि उसी समस्या पर केन्द्रित रखता है ।

आधुनिक शिक्षित लड़कियों के एक वर्ग की मनोवृत्ति पर व्यंग करने के साथ-साथ यह मध्य-वर्ग के भीरु युवक की अस्थिर चित्तता पर भी व्यंग करता है जो शिक्षित नारी की ओर बढ़ता भी है और उससे डरता भी है ।

प्रथम संस्करण की भूमिका

नाटक की भाषा को शिक्षित लोगों की भाषा के तनिक समीप रखने का प्रयास किया गया है, ताकि यह कृत्रिम प्रतीत न हो। इस लिये अंग्रेजी के शब्द अनिवार्य्य रूप से आ गये हैं और भाषा दुरूह तथा क्लिष्ट नहीं।

नाटक के पात्र भी हमारे संक्रांतिकाल के हैं जो न पूर्ण रूप से आधुनिक हैं न पूर्ण रूप से पुरातन और फिर नाटक एक व्यंग है और व्यंग नाटक को कुछ *privileges* (रियायतें) भी प्राप्त हैं। समालोचकों से मेरी विनय है कि वे नाटक की समालोचना करते समय इन बातों को न भूल जायँ।

१८४ अनारकली
लहौर
१० जून १९३९

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

यह तीसरा संस्करण

'स्वर्ग की झलक' के पहले संस्करण से ले कर अब तक देश की स्थिति में भारी परिवर्तन आ गया है। अपने अतीत के स्वप्न देखने के बदले हम भविष्य के स्वप्न देखने लगे हैं। नारी भी घर की चार दीवारी से निकल कर सरकारी दफ्तरों ही में नहीं, मिलिट्री की बैरेकों तक जा पहुँची है, किन्तु मध्य-वर्ग के जिस हिस्से को लेकर यह नाटक लिखा गया है उसकी समस्या आज भी वही है। उसकी पुरानी व्यवस्था का चोला बदला जाय, इसके बदले पैवंद लगा कर उसे ही कायम रखने का प्रयास किया जा रहा है। इसलिए उन घरों की समस्या आज भी वही है।

इन तेरह वर्षों में नाटक छै सात संस्करण हो जाते, पर टैक्स्ट बुक प्रकाशक की उदासीनता के करण यह वर्षों तक उनके गोदाम में पड़ा रहा और दो संस्करणों के होते भी साधारण हिन्दी पाठक इससे अपरिचित हैं,

इस संस्करण में छात्रों ही का नहीं साधारण पाठकों का भी ध्यान रखा गया है। मुझे प्रसन्नता है कि नाटक पहली बार इतने सुन्दर ढंग से संशोधित और परिवर्धित ढंग से छप रहा है।

प्रयाग
२७-५-५०

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

स्वर्ग की झलक

पहला अंक

[पर्दे के धीरे धीरे उठने पर हम मध्यवर्ग के एक ड्राइंग रूम से परिचित होते हैं, जिससे एक साथ ही बैठने, उठने, कपड़े पहनने तथा सोने के कमरे का काम लिया गया है। यूरोप का मध्यवर्ग, विभिन्न कामों के लिए विभिन्न कमरों के सुख का उपभोग कर सकता है, पर भारत के मध्यवर्गीय को, जिसकी औसत आय वहां के श्रमी की औसत आय से भी कहीं कम होती है, यह सब कैसे प्राप्त हो! इसी लिए ड्राइंग रूम में तीनों आवश्यकताओं के अनुसार सामान सजा रखा है।

सामने की दीवार में अंगीठी है, जिस पर एक फूलदार कपड़ा बिछा हुआ है। इस पर दायीं से बायीं ओर को अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से शीशा, कंघी, शेविंग-बक्स, क्रीम की शीशी, टाइमपीस, ताश का डिब्बा, कपड़े साफ़ करने का ब्रश और बच्चों के कुछ खिलौने रखे हैं।

अंगीठी के नीचे दीवार के साथ मेज़ लगी है, जिस पर कुछ पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं मेज़ के तीन ओर कुर्सियां हैं, जिनमें से कुछ का मुँह मेज़ की ओर है और कुछ का दर्शकों की ओर। एक कुर्सी की पीठ पर पुरानी कमीज़ और दूसरी पर नयी पतलून पड़ी है। ये दोनों गृहस्वामी लाला गिरधारीलाल के छोटे भाई रघुनंदन की सम्पत्ति हैं, जो इन्हें बड़ी बेपरवाही से फेंक कर आँगन में नहाने गया हुआ है।

बायीं ओर, दीवार के साथ, एक पलंग बिछा है, जो शायद रघु के पहले विवाह में आया था । इस पर रेशमी दुसूती की फूलदार चादर बिछी है और सुरुचि से कढ़ा हुआ तकिया, इस समय जैसे इस साम्राज्य का एकाधिपति बना, आराम कर रहा है।

दायीं दीवार में खूंटियों पर कपड़े टँगे है, उन पर दो एक टाइयां बेपरवाही से रखी हैं । लटकते हुए कपड़ो के नीचे फर्श पर दो आराम कुर्सियां बिछी हुई है। सामने अँगीठी के दायीं ओर भी एक खूंटी है जिस पर कोट लटक रहा है।

बायीं ओर, पलग के पांयते की तरफ, एक दरवाज़ा है, जो दूसरे कमरे को गया है । सामने वाली दीवार में मेज़ के दायीं ओर एक दरवाज़ा है, जो आंगन में खुलता है। दोनों दरवाज़ों पर कुछ सस्ते लकीरदार पर्दे पड़े है।

अँगीठी पर रखे हुए टाइमपीस में इस समय साढ़े दस बज रहे हैं। साधारणतया लाला गिरधारी लाल इस समय तक अपनी दुकान पर जा चुके होते हैं, जो बड़े बाज़ार में स्थित है और जिस पर 'गिरधारी लाल बूट हाउस' का नया चमचमाता बोर्ड आने जाने वालों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। दुकान तो लाला गरधारी लाल ने पहले अपेक्षाकृत छोटे बाजार में ही खोली थी, पर यह देख कर कि यूनिवर्सिटी और कालेजों के लड़के लड़कियाँ (जिन पर नगर का आधा व्यापार निर्भर है) बड़े बाज़ार से परे जाने का कष्ट नहीं करते, वे भी अपनी दुकान वहीं उठा लाये। पहले पहल तो उनकी दुकान बड़ी बड़ी दुकानों में भिंची हुई, कारों और और तांगों से उतरने वालों को दिखाई ही न देती थी और भीड़ से दबकर पैदल चलने वाले इक्का दुक्का ग्राहक

ही वहां आ पाते थे, पर अब इस छोटी सी दुकान ने खासे पंख फैला लिये है और अपने इर्द गिर्द की दुकानों को अपनी छाया में लेकर बड़ी दुकानों का मुकाबिला करने लगी है। ग्राहक अब इसकी तड़क भड़क देखकर आप से आप इसकी ओर खिंचे चले आते हैं।

इस उन्नति को प्राप्त होकर भी लाला गिरधारी लाल वही पुराने विचारों के सीधे साधे सरल व्यक्ति हैं। आज महीने का अन्तिम रविवार होने के कारण दुकान बंद है, और इसी लिए उन्होंने भी आज छुट्टी मनाई है। रहा छोटा भाई रघु, तो प्रान्त के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक के संपादन विभाग में होने और रात रात भर ड्यूटी देने के कारण, वह इस समय मीठी गहरी नींद के मजे ले रहा होता है, पर एक तो आज रात को उसे दफ्तर से छुट्टी है और दूसरे इतवार होने के कारण उसे अपने कई मित्रों से मिलना है (जिनकी संख्या, उसकी पत्नी के स्वर्गवास और उसके एक दम संवाददाता से संपादक होने के बाद उत्तरोत्तर बढ़ रही है) इसी लिए अपने स्वभाव के विपरीत रघु आज दस बजे से ही उठ कर, नित्य-कर्म से निवृत्त हो, नहाने चला गया है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद आंगन के दरवाजे से एक हाथ में साबुन की डिबिया और तेल की शीशी तथा दूसरे में तौलिया लिये नयी कमीज़ और लकीरदार पायजामा पहने चप्पल फटफटाते और कांपती आवाज में

मैं बन का पंछी बन के बन बन बोलूं रे
बन बन बोलूं रे

गाते हुए जल्दी जल्दी रघु प्रवेश करता है।

आयु कोई अठाईस तीस वर्ष, पतला छरेरा, शरीर, गंदमी रंग, तीखे नक्श और आँखों में निरंतर रतजगे के कारण तंद्रा की हल्की सी रेखा।

गाते गाते तेल और साबुन अँगीठी पर रखता है और तौलिये से हाथ पोंछ कर उसे एक कुर्सी पर फैला देता है।

तभी लाला गिरधारी लाल प्रवेश करते हैं।

गले में कमीज, उस पर स्वेटर और कमर में दिन के दस बजे जाने के बावजूद नाइटसूट का पायजामा। कोई ४५, ४६ वर्ष के सीधी साधी प्रकृति के व्यक्ति हैं। रघु की अपेक्षा पेट भी उनका कुछ अधिक आगे को बढ़ा हुआ है।

क्योंकि रघु उन्हें भाई साहब कह कर पुकारता है, इसलिए हमें भी उन्हें भाई साहब कहने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए। भाई साहब कुछ घबराये हुए हैं और आकृति उनकी बता रही है कि वे किसी विशेष मामले पर बातचीत करने आये हैं।

रघु अपने गुनगुनाने में मस्त बाल बना रहा है।]

भाई साहब : मैं कहता हूँ, मैं दुकान पर रहता हूँ तो तुम घर होते हो और मैं घर आता हूँ तो तुम दफ्तर चले जाते हो और सुबह सुबह तुम्हें जगाया नहीं जा सकता। आखिर ये लोग जो मेरी जान खा रहे हैं, इन्हें क्या उत्तर दूं। (बाहें कमर के पीछे रखे कुछ क्षण चुप इधर उधर घूमते हैं फिर उसके पास आकर) सोचता था तुम उठ कर मेरी ही ओर आओगे पर देख रहा हूँ कि नहा कर कहीं सीधे बाहर जाने को हो। मैं कहता हूँ तुम कोई निर्णय क्यों नहीं करते।

रघु : (गाना बन्द करके) निर्णय!

भाई साहब : देखो, तुम्हारी पत्नी का देहान्त हुए आज दो वर्ष हो

चुके हैं। वे लोग कब तक रुक सकते हैं। लड़कियां तो अमरबेल की तरह बढ़ती हैं।

रघु : (चुप बाल बनाता है।)

भाई साहब : मैं कहता हूं किसी भलेमानस को यों परेशान कर, बाद में जबाब देना क्या उचित है। कल सुबह शामलाल फिर आया था।

[रघु शीशा कंघी वहीं अंगीठी पर रख देता है और कुर्सी से पतलून उठा कर जल्दी जल्दी अन्दर कमरे में चला जाता है और किवाड़ लगभग बन्द कर लेता है। भाई साहब उसके पीछे जाकर दरवाजे के पास खड़े हो जाते है।]

भाई साहब : देखो, मेरे विचार से तुम्हें अन्य रिश्तों का ध्यान छोड़, इसे ही पसन्द करना चाहिए। (कुछ क्षण घूमते हैं, फिर वहीं दरवाज़े के पास आकर) रिश्तेदार हमारे देखे भाले हैं, हम उन्हें और वे हमें जानते हैं, किसी प्रकार के ठाट बाट, धूम धाम की आवश्यकता नहीं। घर की सी बात है। (फिर घूम कर ज़रा धीमे स्वर में रघु को समझाते हुए) यदि हम कुछ अधिक शान बान न दिखा सके तो भी कोई नाम न धरेगा। और देखो! सब से बड़ी बात तो यह है कि तुम्हारी साली को तुम्हारे बच्चे से जो प्यार हो सकता है, वह किसी अन्य लड़की को नहीं हो सकता। मेरे विचार में यदि तुम्हें विवाह करना है तो रत्ना से.....

रघु : (पतलून पहन कर बाहर आते हुए) रत्ना से विवाह, कदापि नहीं!

[खूंटी से टाई उठाकर शीशे के सामने जा खड़ा होता है और जल्दी जल्दी उसकी गाँठ बाँधता है।]

भाई साहब : (उदासीनता से मुड़ते हुए) खैर, तुम्हारी इच्छा, मेरा काम तो उनका संदेश देना था सो मैंने दे दिया।

(बाहर जाने लगते हैं।)

रघु : (टाई बांधते बांधते रुक कर) लेकिन भाई साहब...

भाई साहब : (मुड़ कर, चिडचिड़े स्वर में) मैं कहता हूँ, अब तुम्हारी इच्छा! मैंने तो शामलाल से कल ही कह दिया था कि वह हमारे कहने में बिल्कुल नहीं (मेज़ के कोने पर बैठ जाते हैं) कल सुबह शामलाल आया था। शगुन वह मुझे ही दे रहा था, पर मैंने उसे तभी समझा दिया था कि रघु के मामले में मुझे या उसकी भाभी को कुछ नहीं करना, कुछ नहीं कहना! जहाँ उसका जी चाहे, जहाँ उसका मन मिले, विवाह करे। हम न उसे करने को कहेंगे न छोड़ने को।

रघु : (टाई बांधते बांधते रुक कर) लेकिन भाई साहब.....

भाई साहब : दोपहर को वह फिर आया, साथ उसके उसका बड़ा भाई भी था। उन्हें संदेह था कि शायद मैं यह नाता पसन्द नहीं करता। मैंने उन्हें समझाया कि आप कभी यह ख्याल न करें। इसके विपरीत, हो सकता है कुछ कारणों से मैं इसे पसन्द ही करूँ, पर रघु को मैं विवश न करूँगा। न कहूँगा करो, न कहूँगा छोड़ो! हाँ संदेश मैं आपका पहुँचा दूंगा।

रघु : (टाई बांध कर कोट पहनते हुए) लेकिन भाई साहब...

भाई साहब : वे अनुरोध करने लगे कि आप मान जायें तो हम रघु को जाकर मना लेंगे।

रघु : (नौकर को आवाज देते हुए) बिरजू, बिरजू।

भाई साहब : (अपनी बात जारी रखते हुए) किन्तु मैंने हाथ जोड़ दिये (हाथ जोड़ते हैं।) कि आप उसे ही जाकर मनाइए।

('उसे' पर सिर हिलाते हैं।)

रघु : (कुर्सी पर बैठ कर दायें पांव में मौज़ा पहनते हुए) लेकिन भाई साहब... (बिरजू को आते देख कर) क्यों बे, जूतों को पालिश नहीं किया तूने, कल रात तुझसे क्या कहा था (उठकर उसे कान से पकड़कर जूता दिखाते हुए) अभी तक वैसे के वैसे धरे हैं। और मुझे जल्दी जाना है। चल कर जल्दी पालिश इन्हें।

[उसका कान उमेठते हुए उसे वहीं बैठाकर फिर वापस आ,कुर्सी पर बैठ, दायें पांव में मौज़ा पहनने लगता है।]

भाई साहब : (उसी स्वर में) शाम को वह फिर आया, साथ उसके उसका पिता भी था। विवश हो कर मैंने सारी स्थित बताई । समझाया कि महाशय जी आप रघु को नहीं जानते। विचित्र स्वभाव का आदमी है। अव्वल तो जो हम कहेंगे वह करेगा ही नहीं और यदि हमारे अनुरोध पर उसने रिश्ता स्वीकार भी कर लिया तो आयु पर्यन्त हमें सुइयां चुभोता रहेगा कि मैं तो कभी विवाह न करता, यदि आप विवश न करते या आप ने हां कर दी थी, इस लिए आप

की बात रखने के लिए मैं फंस गया, नहीं अमुक लड़की कहीं अच्छी थी और जब भी अपनी पत्नी से किसी बात पर उसका झगड़ा हुआ— और झगड़ा आप जानते है, घरों में हो ही जाता है— तो वह उसका सब दोष हमारे सिर मढ़ देगा।

रघु : (बिरजू से बूट और ब्रश लेकर स्वयं ब्रश के दो हाथ मारते हुए) लेकिन भाई साहब.....

भाई साहब : सो मैंने उन्हें कह दिया कि भाई आप हमें इस अग्नि-परीक्षा में न डालिए। आखिर रघु से आप का भी तो सम्बन्ध है। बस जहाँ वह राज़ी वहँ हम राज़ी।

(फिर दरवाजे की ओर जाते हैं।)

रघु : (जूता पहनते हुए) लेकिन भाई साहब, मैंने कब आपकी बात नहीं मानी ?

भाई साहब : (फिर वापस आते हुए और भी ऊँचे स्वर में) नहीं मानी, मैं पूछता हूँ, तुम कब हमारी बात मानते हो। यदि हम कहें उत्तर को जाओ तो तुम जरूर दक्खन को जाओगे। अब यदि शामलाल आया, या उसका भाई, या उसका बाप तो साफ़ इनकार कर दूंगा— साफ इनकार—हुँ !

[बेजारी से सिर हिलाते हुए फिर दरवाजे की ओर जाते हैं।]

रघु : (जूते पहनते पहनते उठता है बिरजू उसे जूता पहनाने लगता है) लेकिन भाई साहब, आप अन्याय करते हैं।

भाई साहब : (मुड़कर) मैं अन्याय करता हूँ।

रघु : देखिए, जरा कुर्सी पर बैठ जाइए।

भाई साहब : तुम कहो।

[लेकिन वे कुर्सी पर बैठ जाते हैं, इस प्रकार जैसे उन्हें बरबस बैठाया गया हो। बिरजू रघु को बूट पहना कर जाता है।]

रघु : यह बताइए मैंने कब आपकी बात नहीं मानी।

भाई साहब : तुमने कब मानी ?

रघु : यह जीवन भर का मामला है भाई साहब। एक बार बिना सोचे समझे इस अँधेरी खोह में कूद कर देख चुका हूँ। मैं आप ही से पूछता हूँ, आपको इस नाते में कोई आपत्ति तो नहीं ?

भाई साहब : (फर दिलचस्पी लेते हुए) नहीं, यदि तुम्हें पसन्द हो तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है।

रघु : मुझे पसन्द हो...(ज़ोर से ठहाका मारता है)... रद्दा को भाई साहब मैं भली-भांति जानता हूँ। साली तो वह मेरी ही है। छठी तक तो वह पढ़ी नहीं।

भाई साहब : घर ही में पढ़ कर उसने हिन्दी भूषण की परीक्षा दी है.....

रघु : भूषण (ठहाका लगाते हुए खूंटी से कोट उतारता है।) मैं जानता हूँ। लेकिन इस 'भूषण' के होते हुए भी पत्र तक वह ठीक तरह से नहीं लिख सकती। बात करने, कपड़ा पहनने की उसे तमीज़ नहीं, चार मित्र आ जायं तो लाज से दुबक कर अपने कमरे में जा बैठे। (कोट पहनते हुए) मैं पूछता हूँ आप किस तरह मुझे फिर चक्की का पाट गले में बाँधने को कहते हैं।

भाई साहब : (उदासीनता से एक टांग हिलाते हुए) मैं कब कहता हूँ।

रघु : (बढ़कर अँगीठी से हैट उठाते हुए) विमला से मेरा कितना झगड़ा हुआ करता था (ब्रश उठाकर हैट साफ़ करता है।) माना बाद को हम एक दूसरे को समझ गये थे, माना बाद को मुझे उससे प्रेम भी हो गया था, यह भी मान लिया कि बाद को हमारा वैवाहिक जीवन अपेक्षाकृत सुखी था (क्रीम की शीशी पर दृष्टि जाती है। हैट मेज पर रख देता है और क्रीम की शीशी उठा लेता है) पर तनिक उन दिनों की कल्पना कीजिए (शीशी खोल कर उँगली से मुँह पर क्रीम लगाता है) जब मेरा विवाह हुआ ही था। वह पहला वर्ष, उसकी कल्पना मात्र से मेरे प्राण काँप जाते हैं। हम कितना लड़ते झगड़ते थे, कितनी बार आपको और भाभी को हम दोनों में समझौता कराना पड़ता था।

[शीशे के सामने जाकर जोर जोर से मुँह पर क्रीम मलता है।]

भाई साहब : (उसी उदासीनता से) हां, अच्छी तरह सोच विचार लो।

[भाभी अपने रोते हुए बच्चे को लिये, छुनछुना बजाकर उसे चुप कराती हुई, प्रवेश करती है। रघु हैट लेकर शीशे में देखकर उसे सिर पर रखता है।

भाभी की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, सुन्दर और हँसमुख। जब उनका विवाह हुआ था तो वे केवल मैट्रिक थीं। परन्तु घर ही में शिक्षा लेकर उन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की है। कदाचित् इसी शिक्षा का सुपरिणाम है

कि चार बच्चों की मां होने पर भी उनकी सुन्दरता में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। आंखो पर सुनहरे फ्रेम की सुन्दर ऐनक है और शिक्षा ने वयस के साथ मिलकर उनकी अकृति को सौम्यता के साथ साथ एक विचित्र आकर्षण प्रदान कर दिया है। उनकी गतिमें तरुण नदी का सा चांचल्य नहीं, वरन् भरे पुरे दरिया का सा गाम्भीर्य है।

नौकर होते हुए भी घर का सब काम अपने हाथ से करने के कारण, अथवा संतति में चारों लड़के ही पाने के निरन्तर उल्लास के कारण उनके ओठो पर सदैव एक स्वर्ण-स्मिति खेलती रहती है। साधारण शलवार कमीज़ और दुपट्टा पहने है, कमीज के ऊपर एक घर का बुना हुआ गहरे लाल रंग का छोटा सा स्वेटर भी है। कानो में लम्बे लम्बे कांटे हैं और हाथों में चूड़ियां। सिर का दुपट्टा चूंकि खिसक गया है, इसलिए सुचारू रूप से संवरे हुए बाल साफ़ दिखाई देते है।]

भाभी : (बच्चे को पुचकारते हुए) पुच, पुच।

रघु : (अपनी बात को जारी रखते हुए भाई साहब से) और शिक्षित साथी की आवश्यकता मुझे पहले से कहीं अधिक है।

भाभी : इसमें क्या संदेह है ?

रघु : (भाभी की ओर मुड़ कर) क्या ?

भाभी : (उसकी बात का उत्तर दिये बिना नन्हें से) क्यों नन्हें, चाची तुम्हें पढ़ी लिखी चाहिए अथवा अनपढ़ !

रघु : (विवशता से) आप लोग, भाई साहब मेरी कठिनाई को बिल्कुल नहीं समझते। देखिए, समाज में मेरा दर्जा

पहले से कहीं अधिक ऊंचा हो गया है। दर-दर की ठोकरें खाने वाले, प्रायः अपमान को भी अपने व्यवसाय का आवश्यक अंग समझकर चलने वाले, संवाददाता और अपनी कुर्सी पर बैठे सारे संसार को आलोचना के तीरों से घायल कर देने वाले संपादक में अन्तर है। अब न वे मित्र रहे न समाज। पहले मित्रों में कम पढ़ी लिखी पत्नी भी अपेक्षाकृत आदर से देखी जाती थी और इनमें अच्छी पढ़ी लिखी का भी कोई महत्व नहीं। अशोक की पत्नी बी० ए० है, राजेन्द्र की एम० ए०, सत्य की एम० बी० बी० एस० अब बताइए रत्ना इन में किस तरह फिट बैठेगी।

(फिर शीशे में अपनी सूरत देखता है।)

भाई साहब : (गम्भीरता से, फिर दिलचस्पी लेते हुए) तुम उसे और पढ़ा सकते हो।

रघु : (शीशे को ज़ोर से मेज़ पर पटकते हुए ऊँचे स्वर में) मेरे पास न अब वह समय है न वह उत्साह।

(रामप्रसाद प्रवेश करता है।)

[आयु कोई २६, २७ वर्ष। भाभी के छोटे भाई हैं और इस नाते से इस घर में उनका जो महत्व है उसे जानते हैं। काम आपने कभी कोई किया नहीं, बल्कि यों कहना चाहिए कि आरम्भ तो बहुत किये पर समाप्त कोई नहीं किया। आजकल एक बीमा कम्पनी के एजेन्ट के रूप में लाहौर के आनन्द ले रहे हैं—'जीवन का अन्त जब दुख है तो जितने दिन सुख से बिताये जा सकें वही इस जीवन का सार है' इस सिद्धांत में विश्वास

रखते हैं। बातें आप प्रत्येक विषय पर कर सकते है, बल्कि हर विषय पर राय देना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हैं।

अभी रात ही के कपड़ों में हैं। नौकरी तो इनकी है नहीं और न ही कोई गारंटी बीमा कम्पनी को देनी है, कमीशन पर काम करते हैं, फिर क्या आवश्यकता है कि सुबह सुबह उठकर नींद हराम करें।]

रामप्रसाद : (दरवाज़े ही से) क्या बात है, इतना शोर क्यों मचाया जा रहा है।

भाभी : हमारे देवर अपनी भावी-पत्नी का निर्णय कर रहे हैं।

रघु : भाभी !

[एक बार फिर शीशा देख कर ठोडी के नीचे लगी क्रीम जोर जोर से मलता है]

रामप्रसाद : क्या निर्णय किया ?

(कुर्सी पर बैठ जाता है)

रघु : (उसके सिर पर पहुँच कर) तुम पहले यह बताओ कि समाज में मेरा दर्जा बढ़ गया है या नहीं ?

रामप्रसाद : (तनिक पीछे हटकर) निश्चय !

रघु : मेरे मित्र बदल गये हैं या नहीं ?

रामप्रसाद : निश्चय !

रघु : मुझे शिक्षित साथी की जरूरत पहले से अधिक है या नहीं ?

रामप्रसाद : निश्चय !

रघु : अब बताओ, मेरे ससुराल वाले मेरी साली रत्ना के लिए जोर दे रहे हैं और भाई साहब ने.....

भाई साहब : मैंने कुछ नहीं कहा, मेरा केवल यही विचार था कि नये नातेदार ढूँढ़ने के बदले पुराने देखे भाले रिश्तेदार अच्छे हैं। और फिर मैं यह सोचता था कि मौसी होने के नाते रत्ना इसके लड़के को भी अच्छी तरह रखेगी। वैसे लड़की घर के काम काज में दक्ष है। खाना पकाने और सीने पिरोने में.....

रघु : (शीशे में देखकर टाई को ठीक करता हुआ) पर मैं रसोयिन या दरज़िन नहीं चाहता।

भाई साहब : सुशील है।

रघु : (उपेक्षा से) गुड़िया !

भाई साहब : (जैसे समझाते हुए) और मैं कहता हूँ तुम उसे और पढ़ा लेना।

रघु : (तनिक ऊँचे स्वर में) मैंने पहले कह दिया है कि मेरे पास न अब वह समय है न वह उत्साह।

रामप्रसाद : बुरी तो नहीं रत्ना।

रघु : तुम मूर्ख हो !

[रामप्रसाद ठहाका लगाता है जिसमें और कोई शामिल नहीं होता।]

भाभो : (हँसते हुए) भाई हमारे देवर को तो ऐसी लड़की चाहिए जो श्रीमती अशोक की तरह साड़ी पहन सके, श्रीमती राजेन्द्र की तरह डेढ़ दर्जन ढंग से बाल

बना सके और उन लेडी डाक्टर की भाँति घर की सफाई.....

रामप्रसाद : इन नयी पढ़ी लिखी लड़कियों को और आता ही क्या है ? कपड़े पहनना और घर की सफाई करना और वह भी तब, जब धोबी और नौकर साथ दें।

[ठहाका मारता है। और कोई इस ठहाके में योग नहीं देता।]

भाभी : (ओठों पर हल्की सी मुस्कान फैल जाती है) पढ़ी लिखी लड़कियों को बहुत कुछ आता है.....

भाई साहब : क्या आता है। मैं भी तो सुनूँ !

रघु : (चिढ़ कर) अच्छा आपकी जो इच्छा हो करें, मुझे तो देर हो रही है।

(एक बार शीशे में देख कर तेज तेज चलता है।)

भाभी : अरे खाना तो खाते जाओ।

रघु : (आंगन के दरवाजे से) आज अशोक के घर मेरी दावत है।

(चला जाता है।)

भाभी : (भाई साहब से) मैं कहती हूँ, हँसी के साथ हँसी रही। आप रत्ना के लिए क्यों इतना ज़ोर दे रहे हैं।

भाई साहब : (चुप)

भाभी : जब उसे पसन्द ही नहीं तो कै दिन निभ सकेगी ? फिर वही रोज की किल किल होगी।

भाई साहब : (चुप)

रामप्रसाद : अब अनपढ़ लड़की से इनका गुज़ारा हो चुका।

भाभी : प्रो० राजलाल की पत्नी आई थीं। उन्हे रघु पसन्द है और रघु के बच्चे के मामले में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं।उनकी लड़की बी० ए० में पढ़ती है। गाना बजाना भी खूब जानती है और मैं तो सुनती हूँ कि नृत्य कला में भी निपुण है और सुन्दर.....रद्दा बेचारी उसके सामने क्या ठहरेगी !

भाई साहब : (दृष्टि अचानक घड़ी पर जा पड़ती है, चौंक कर) ओह ! ग्यारह बजने को हैं। (अर्थ हीन हँसी) और मुझे अभी नहाना है।

भाभी : (भेद भरे स्वर में) और प्रो० राजलाल प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं उनके मित्रों में बड़े बड़े आदमी शामिल हैं। यहां रिश्ता करने से आपको भी कितना लाभ हो सकता है। इन बस्ती वालों के यहां क्या रखा है ? आये गये को पानी तक तो पूछ नहीं सकते !

भाई साहब : (हवा को हाथ से चीरते हुए) हटाओ जी, मैं नहाऊँगा, शाम को देखा जायेगा यह सब ! चलो, तौलिया आदि स्नानगृह में रखो।

(आँगन की ओर जाते हैं, पीछे पीछे भाभी जाती है।)

रामप्रसाद : मैं कहता हूँ मेरी कहीं दावत नहीं, मुझे खाना यहीं पहुँच जाये।

[मेज़ पर पांव टिकाकर पीछे को लेट जाता है।]

पर्दा

दूसरा अंक

[इससे पहले कि रघु मि० अशोक के दरवाजे पर दस्तक दे, ड्राइंग-रूम में मि० अशोक और उनकी श्रीमती में उसी के आगमन की बहस चल रही है। इसी वाद-विवाद में ऐसा क्षण आ जाता है कि मि० अशोक चुप सामने शून्य में देखने लग जाते हैं और श्रीमती अशोक कौच पर पीछे को लेट जाती हैं। तभी पर्दा धीरे-धीरे उठता है और श्रीमती अशोक सामने अँगीठे के नीचे रखे हुए लम्बे कौच के कोने में बैठी दिखाई देती है।

पर्दा उठते समय वे सामने के छोटे से मेज पर, पांव पर पांव रखे पीछे को लेटी हुई एक सिल्क के रुमाल पर फूल निकाल रही हैं।

गहरे पीले रंग की किनारीदार साडी पहने है। और इसमें उनका पीला सा सुन्दर मुख और भी सुन्दर लग रहा है। साड़ी का छोर सिर से खिसक कर गर्दन के गिर्द लिपट गया है, अथवा स्वयं ही लिपटा लिया गया ह, क्योंकि बालों में कृत्रिम घुंघर डाले गये हैं और उन घुंघरों में—कदाचित स्थाई बनाने के लिए—सुइयां अभी लगी हुई हैं।

लम्बे कौच के दोनों ओर तनिक हटकर, दो छोटे कौच पड़े हैं। फर्श पर दरी बिछी है और दरी के मध्य

ग़ालीचे और उन पर एक समाचार-पत्र के पृष्ठ बिखरे पड़े हैं।

बाईं दीवार के मध्य एक छोटी सी मेज़ है, जिस पर ग्रामोफोन की मशीन और रिकार्डों का डिब्बा रखा हुआ है। उससे परे, कोने में, फर्श पर एक चिलमची रखी है और पास एक पानी का जग रखा हुआ है। ग्रामोफोन पर हाथ रखे, केवल एक कमीज और पतलून पहने, मि० अशोक शून्य में देख रहे हैं। उनकी दृष्टि जैसे अँगीठी पर पीतल के दो हाथियों के मध्य रखे हुए ग्लोब पर जमी है।

मि० अशोक बत्तीस पैंतीस वर्ष के युवक हैं। व्यवसाय के विचार से भाषण-दाता तो, प्रकाशक तो, लेखक तो, जो भी चाहे समझ लीजिए। समाज की पुनर्व्यवस्था आपका प्रिय विषय है और इसी पर आपने कई लेख और पुस्तकें लिखी हैं और काफी प्रभावशाली भाषण दिये हैं। अपनी इसी योग्यता के बल पर स्वयं विश्वविद्यालय की कोई डिग्री न रखने पर भी श्रीमती अशोक ऐसी ग्रेजुएट लड़की को विवाह के बन्धन में बांध लाये हैं।

इस समय उनकी आकृति परेशान है और बाल बिखरे हुए हैं।

ग्लोब से उनकी दृष्टि अँगीठी पर रखे अपने फोटो पर जाती है; वहां से श्रीमती जी के एक फोटो पर और वहां से अपने इकट्ठे फोटो पर और एक लम्बी साँस लेकर सिर नीचे और हाथ पीछे किए घूमने लगते हैं। दायीं ओर की दीवार में दो अलमारियां हैं जिनके पट खुले हैं और जिनमें चुनी हुई पुस्तकें साफ दिखाई दे रही हैं। वहाँ तक पहुंच कर अन्यमनस्क भाव

से एक पुस्तक खींच लेते हैं। मुड़कर एक दो पन्ने देखते हैं और श्रीमती जी के पांवों के पास मेज़ पर पटक देते हैं। फिर अचानक—]

मि० अशोक : देखो सीता जी, यह आपकी ज्यादती है।

[सीता जो कोई उत्तर नहीं देती, फूल निकाले जाती हैं। मि० अशोक कुछ पग चलते हैं फिर रुक कर]

— : नौकर में तो उठने की हिम्मत नहीं (शिकायत के स्वर में) आप जरा थोड़ा सा कष्ट कर लेतीं तो.....

श्रीमती अशोक : (पूर्ववत सुई चलाती हुई दृष्टि उठाये बिना) मैंने कह दिया मुझ में स्वयं हिम्मत नहीं ?

मि० अशोक : (मनुहार के स्वर में) देखो सीता खीर तो मैंने पका ही डाली है, सब्जी मैं ले आया हूँ। तुम ज़रा उसे चढ़ा देतीं और चार रोटियाँ (चुटकी बजाता है).....

श्रीमती अशोक : मैंने कभी बनाई भी हों ?

[अँगीठी के ऊपर दीवार पर टँगे हुए क्लाक में टन टन आधा घंटा बीतने की आवाज आती है]

मि० अशोक : (घबराकर) देखो साढ़े ग्यारह बज गये, रघुनन्दन आ ही रहा होगा (विनीत स्वर में) उठो मेरी रानी...

श्रीमती अशोक : (बिना उनकी ओर देखे) मेरे सिर में दर्द है सारी रात जागती रही हूँ।

मि० अशोक : (तनिक कड़े स्वर में) देखो सीता मैं तुम्हें व्यर्थ कभी क नहीं देता। इतने दिनों से तँदूर ही से रोटी आ रही है, पर कल रघु को मैंने निमंत्रण दे दिया.....

श्रीमती अशोक : जैसे मुझे पूछ कर.....

मि० अशोक : (जरा मुस्करा कर) ओ हो ! तुम तो समझती ही नहीं, मैंने यह जो नयी पुस्तक लिखी है, उस पर मैं रघु से समालोचना कराना चाहता हूँ। अंग्रेज़ी में समालोचना का.....(हँसते हैं).....तुम नहीं जानतीं इन दास-वृत्ति रखने वाले भारतीयों पर क्या प्रभाव पड़ता है। (फिर हँसते हैं)...नहीं तो इस दशा में निमन्त्रण...

[जैसे उत्तर मे 'अच्छा चलो' सुनने के लिए रुक जाते है। पर श्रीमती जी यह कहना उचित नहीं समझती। हाँ तेवर चढ़ा लेती हैं कि कौन उत्तर देने का कष्ट करे]

मि० अशोक : लो अब उठो रानी !

श्रीमती अशोक : (जिनका रुतोष अब अपनी सीमा को पहुंच चुका है। उठकर और पाँव मेज से उठाकर) मैं कहती हूँ, आपने मुझे पागल समझ रखा है, एक बार कह दिया मुझ में हिम्मत नहीं ! (तनिक और ऊँचे स्वर में) मुझमें हिम्मत नहीं !! फिर वही (मि० अशोक की आवाज़ की नकल उतारते हुए) उठो रानी !.....उठो रानी ! इस रानी से तो मै बाँदी भली। रात एक घड़ी तो ऊषा ने सोने नहीं दिया। दो बार उसे दूध पिलाने उठी। आप तो न जाने कैसे घोड़े बेच कर सोये, बीस आवाज़ें दीं, हिले तक नहीं और तुलसी भी कम्बख्त मौत से होड़ लगा कर.....

मि० अशोक : वह तो बीमार है।

श्रीमती अशोक : बीमार है तो मैं क्या करूं, दो नौकर क्यों नहीं रख लेते।

मि० अशोक : (समझौते के स्वर में) पर सीता दूध तो हमीं रोज पिलाते हैं, आज तुम्हें पिलाना पड़ गया तो कौन सी आफ़त आ गई.....

श्रीमती अशोक : (और भी तन कर) मैंने कितनी बार आप से नहीं कहा कि एक नौकर ऊषा के लिए और रख दो और रसोइये भी तो दो होने चाहिएँ। एक बीमार ही हो जाता है, चला ही जाता है.....

मि० अशोक : (चिढ़ कर) मर ही जाता है, क्यों न ? (तनिक और ऊँचे स्वर में) दो तो थे, एक चला गया तो मैं क्या करूँ ! घर में नौकरों की मंडी तो है नहीं कि एक चला गया तो झट दूसरे दिन दूसरा ले आये।

श्रीमती अशोक : (उनसे भी ऊँचे स्वर में) दूसरे दिन ? पन्द्रह दिन हो गये.....

मि० अशोक : (चीख़ कर)तुम तो ऐसे कहती हो जैसे मैं जान बूझ कर नहीं लाता।

श्रीमती अशोक : (उनसे ज़्यादा चीख़ कर) मैं क्या जानूँ ? मैं स्वयं तो चूल्हा झोंक नहीं सकती।

[फिर पहले की तरह लेट जाती है। पांव फिर मेज पर रख लेती है]

मि० अशोक : (बे तरह झल्ला कर) जैसे रोज ही तुम चूल्हा झोंकती हो। यदि मुझे मालूम होता, मुझे स्वयं ही रसोइया भी बनाना पड़ेगा ता किसी कम पढ़ी लिखी से...

श्रीमती अशोक : तो अब कर लीजिए, यह अरमान भी क्यों रह जाये ?

मि० अशोक : (गला फाड़कर) सीता...

[बायीं ओर, बरामदे में खुलने वाले दरवाज़े पर, टिक-टिक की आवाज़ आती है।]

मि० अशोक : (धीरे से) शायद रघुनन्दन है।

रघु० : (बाहर से) मैं हूँ रघु !

मि० अशोक : (स्वर में हर्ष और कोमलता लाकर) आओ, आओ !

[मुड़ कर दरवाजे की ओर बढ़ते हैं। श्रीमती अशोक पाँव नीचे कर के; उठ कर बैठ जाती हैं। रघु प्रवेश करता है।]

रघु : क्या बात है इतने ऊँचे चीख रहे हो (श्रीमती अशोक से) नमस्ते जी...

[श्रीमती अशोक आँखों से कुछ कहती हैं जो शायद "नमस्ते" ही है।]

मि० अशोक : (बेज़ारी के स्वर में) चीख रहा हूँ, क्या करूँ बीस बार कहा है कि भाई, तुम आराम करो ! समय पर एक घड़ी का आराम बाद को एक वर्ष की मुसीबत से बचाता है, पर यह मानतीं ही नहीं (थके हुए स्वर में) स्वास्थ्य इनका ख़राब है, रात ये सोईं नहीं; पर ज्योंही सुबह मैंने बताया कि तुम्हारा खाना है, तो झट रसोई घर में जा बैठीं। मैं सब्ज़ी लेने गया था— मेरे आते आते इन्होंने खीर बना डाली (हँसते हैं) खीर बनाने में तो सीताजी बस निपुण हैं। मुझे लग गई देर, वापस आया तो बड़ी मुश्किल से रसोई घर से उठाया कि भाई आराम करो, फिर मुझे ही डाक्टरों के पीछे मारा मारा फिरना पड़ेगा।

रघु : (समर्थन करते हुए) नहीं, नहीं, इस मामले में हठ न करनी चाहिए।

मि० अशोक : और फिर मैंने कहा कि रघु कोई पराया आदमी तो

है नहीं, किसी न किसी तरह प्रबन्ध हो ही जायगा।

रघु : नहीं नहीं, कोई ऐसा कष्ट करने की आवश्यकता नहीं।

मि० अशोक : अरे कष्ट क्या, देखो मिनटों में (चुटकी बजाते है) सब कुछ हो जायगा (पत्नी से) लो अब उठो, हम सब ठीक कर लेंगे। तुम तनिक भी चिन्ता न करो, बस जरा ऐस्पिरीन* ले कर सो रहो।

रघु : मेरा विचार है, ऐस्पिरीन के साथ यदि एक गोली 'कोनीन' † ले लें तो और भी अच्छा है।

मि० अशोक : हाँ हाँ, उठो!

[श्रीमती अशोक बड़ी कठिनाई से उठती है जैसे बीमारी ने उनकी सारी शक्ति छीन ली है।]

श्रीमती अशोक : (रघु से) मि० रघु माफ.....

रघु : ओह, हो, सब ठीक है, आप आराम कीजिए!

[तब मि० अशोक सहारा देकर कर उन्हें दरवाजे की ओर ले जाते है, जो सामने की दीवार में अँगीठी के दायीं ओर है और शयन-गृह को जाता है]

मि० अशोक : (पर्दे को उठाकर पलंग की ओर संकेत करते हुए) लो अब तुम वहां जाकर सो रहो। मैं अभी ऐस्पिरीन भेजता हूँ।

(पर्दा छोड़ कर वापस आते है।)

— : (नौकर को आवाज़ देते हैं।) तुलसी, तुलसी!

---

* ऐस्पिरीन = सिर दर्द की अंग्रेजी दवा।

† कोनीन = ज्वर की अंग्रेजी दवा

(स्वयं ही) तुलसी तो बीमार है (खोखली हँसी हँसते हैं।)

(और समीप आ जाते हैं।)

— : (रघु से) बैठो खड़े क्यों हो।

[रघु बैठ जाता है, मि० अशोक की दृष्टि अचानक गालीचे पर पड़े अखबार पर जाती है]

मि० अशोक : (समाचार-पत्र उठाकर।) आखिर कांग्रेस की कार्य्य-कारिणी के १३ सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया, पर आश्चर्य तो यह है कि जवाहरलाल ने भी.. ...

(छोटे कौच में धँस जाते हैं।)

— : (समाचार-पत्र को मरोड़ कर गोदी में रखते हुए) अच्छा तुम यह बताओ कि तुम्हें अच्छा क्या लगता है। दुर्भाग्य से नौकर हमारा बीमार है, और तुम देख ही रहे हो, सीता जी की तबीयत ठीक नहीं तो फिर रोटी होटल से मँगाई जाय? सिंध-होटल में सारा प्रबंध किया जा सकता है? सब कुछ मिनटों में हो जायगा।

(चुटकी बजाते हैं)

रघु : देखो भाई कष्ट न करो, मुझे कुछ वैसी भूख भी नहीं, फिर किसी दिन सही।

मि० अशोक : इसमें कष्ट क्या (हँसते हैं।) पर सुनो घर और होटल की रोटी तो हम रोज़ ही खाते हैं, पर कभी न कभी कुछ विभिन्नता भी होनी चाहिए। आज तँदूर ही की क्यों न रहे? (जैसे तँदूर के ज़िक्र ही से किसी दूसरी दुनिया में पहुँच गये हैं।) माश की छौंकी हुई दाल हो, तखत महल का घी और तँदूर के पराँठे। मैं तो,

सौगन्ध तुम्हारी, इन चीजों को तरस गया हूँ।...

(बाहर टिक-टिक की आवाज आती है।)

मि० अशोक : (वहीं बैठे-बैठे) कौन है ?

बाहर से : मैं हूँ जी तँदूर वाला।

मि० अशोक : क्या बात है ?

तँदूर वाला : हजूर इतने दिनों से खाना आ रहा है, हिसाब.....

मि० अशोक : (जल्दी से उठकर दरवाजे की ओर जाते हुए) क्या बक रहे हो ?

[बाहर चले जाते हैं। दरवाजा खट से बन्द हो जाता है। रघु समाचार पत्र उठा कर देखता है, जो फिर गलीचे पर गिर पड़ा है। कुछ देर बाद मि० अशोक प्रवेश करते हैं।]

मि० अशोक : तँदूर वाला आया था, तो फिर क्या विचार है ? पराँठे ही रहें, घी हमारे यहाँ तखत महल से आया है—अबोहर से एक सौ एक मील के फासले से, पराँठों का मज़ा आ जायगा। (अचानक मुड़ कर अन्दर कमरे की ओर जाते हुए) बस एक मिनट, जरा कोट पहन आऊँ।

[रघु फिर समाचार पत्र खोलता है। कुछ क्षण बाद कोट पहने हुए मि० अशोक वापस आते हैं।]

मि० अशोक : (दरवाजे ही से) क्यों भई, यूथिका रे का रिकार्ड सुना तुमने (गुनगुनाते हैं)

" दरस बिन दूखन लागे नैन ,,

— : बिलकुल नया है, साढ़े तीन रुपये ले लिये कम्बख्तों ने, सुनोगे तो सिर धुनोगे।

[बढ़ कर ग्रामोफोन को खोल कर गुनगुनाते हुए चाबी देते हैं।]

— : देखो तँदूर बस नीचे ही है, पाँच मिनट में आ जाऊँगा, इतने में तुम सुनो !

[डिब्बे से रिकार्ड निकाल कर सुई बदल कर लगा देते हैं।

रिकार्ड की ट्यून बजने लगती है।]

— : अच्छा लगा, तो दूसरी तरफ लगा देना। मीरा बाई का गीत है, और यूथिका रे का मधुर स्वर ! मैं तो किसी दिन कलकत्ता चला जाऊँगा उस कम्बख्त से भेंट करने !

(हँसते हुए चले जाते हैं)

[रिकार्ड बजना शुरू होता है। इसके साथ ही शयन-गृह में, शायद उठ कर, ऊषा—मि० अशोक की डेढ़ वर्ष की बच्ची—रोने लग जाती है। इधर अन्तरा आरम्भ होता है, उधर ऊषा अपने स्वर को पंचम पर ले जाकर रोना शुरू कर देती है। इसके साथ ही श्रीमती अशोक का थका, चिढ़ा स्वर सुनाई देता है—)

— : सोजा रानी सोजा !

[बेजारी से सिर हिला कर रघु दरवाजे के पास आता है।]

रघु : (बाहर पर्दे के पास खड़े होकर) मैं कहता हूँ इसे मुझे दे दीजिए ?

श्रीमती अशोक : (अन्दर से बारीक और तीखी आवाज में) नहीं जी, यह अपने पिता जी के अतिरिक्त और किसी के पास नहीं जाती, मैं तो जैसे इसे काटती हूँ।

[रघु मुड़ना चाहता है, ऊषा और भी जोर से रोती है।

रघु : (फिर मुड़ कर) मैं कहता हूँ आप दे दीजिए इसे, मैं चुप करा दूंगा।

[शयन-गृह में अपने बिस्तर से उठ कर श्रीमती अशोक बच्ची को उठाती हैं और अन्दर ही से हाथ बढ़ा कर उसे रघु को दे देती हैं।]

श्रीमती अशोक : आप भी लेकर देख लीजिए।

[फिर वापस चली जाती है। रघु सीटी बजाकर बच्ची को चुप कराना चाहता है, पर उस के पास आकर वह और भी जोर से रोने लगती है, वह उतरी पड़ती है। इसी परेशानी में, सीटी बजाना उसे बिल्कुल भूल जाता है और मुँह गोलाकार बना रह जाता है फिर:—]

रघु : (खीज के स्वर में) आ, आ तुम्हें गाना सुनायें !

[उसे ग्रामोफोन के पास ले आता है, पर इस बीच में रिकार्ड बज चुका होता है। एक हाथ से बच्ची को थाम, सुई को उठा कर फिर शुरू से लगा देता है। रिकार्ड फिर बजना आरम्भ हो जाता है, पर चाबी चूँकि समाप्त हो गई है, इस लिए बहुत धीरे-धीरे बजता है।]

रघु : (अपने आप से) ओह ! चाबी तो खत्म हो गई।

[ऊषा को कौच पर लिटा कर चाबी देने लगता है। वह और भी जोर से रोती है, कौच पर उछल-उछल पड़ती है। तभी मि० अशोक प्रवेश करते है।]

मि० अशोक : ओह, यह जाग पड़ी। आ तो मेरी रानी बेटी ?

[उसे उठा कर गोद से लगा लेते हैं। बच्ची चुप हो जाती है।]

मि० अशोक : (बच्ची को कंधे से लगा कर थपथपाते हुए) बस अभी पाँच मिनट में सब कुछ आ जायगा। दही के लिए पैसे और पराँठों के लिए घी दे आया हूँ।

(रिकार्ड धीरे-धीरे बज रहा है।)

मि० अशोक : क्या लोच है इसके स्वर में (सहसा चौंक कर) पर चाबी शायद तुमने नहीं दी।

रघु : मैं देने ही लगा था कि आप आ गये !

मि० अशोक : दूसरा लगा दो !

रघु : (बेजारी से) हटाओ जी !

[सुई हटा देता है, रिकार्ड बन्द हो जाता है। मि० अशोक ऊषा को कंधे से लगाये लोरी गुनगुनाते हुए घूमते है।]

सोजा मेरी रानी सोजा
ऊषा बड़ी सयानी सोजा

(फिर रघु के समीप आ कर) तुमने मेरी पुस्तक देखी ?

रघु : 'स्वर्ग की झलक', हाँ देखी ?

मि० अशोक : पढ़ी, पसन्द आई ?

रघु : आपकी शैली में प्रवाह है।

मि० अशोक : उसमें दी गई युक्तियों का, हो सकता है, तुम समर्थन न करो, पर भाई अपना-अपना विचार है और अपना-अपना अनुभव !

(घूमते हैं।)

— : (फिर रघु के पास रुक कर) मैं कहता हूँ कि पत्नी क्यों अपने अस्तित्व को अपने पति के अस्तित्व में लीन कर दे ? अपनी हस्ती वह, अलग क्यों न रखे ? हमारे वैवाहिक जीवन में जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, वे इसी घातक विचार का तो परिणाम हैं कि पति पत्नी का परमेश्वर है। (बेजारी से एक 'हुँ' कर देते हैं।) मेरा और (तनिक हँस कर) श्रीमती अशोक का यह विचार है कि पति पत्नी दो पृथक्-पृथक् हस्तियाँ हैं। दोनों अपने-अपने कृतित्व के लिए स्वतंत्र ! न पत्नी पर पति के काम का जिम्मा है, न पति पर पत्नी के कृत्य का दायित्व ! और हमारा वैवाहिक जीवन नीलम, निर्मल जल-स्त्रोत की भाँति अविराम गति से बहे जा रहा है, किसी प्रकार का मैल नहीं, किसी प्रकार की रुकावट नहीं।

[ऊषा कुनमुनाती है। अशोक फिर उसे लोरी देते हुए घूमते हैं:—

सोजा मेरी रानी सोजा
ऊषा बड़ी सयानी सोजा

[दरवाजे पर टिक-टिक की आवाज़ सुनाई देती है।]

मि० अशोक : (कौन) ?

तँदूर वाला : (बाहर से) बाबू जी खाना ले आया हूँ।

मि० अशोक : क्यों भाई उधर चलें—खाने के कमरे में या यहीं रहे, (फिर स्वयं ही) ले आओ भाई इधर ही लेआओ !

[रघु छोटे मेज पर से कपड़ा उठा देता है।

ग्रामोफोन वाली मेज के साथ जो कुर्सी पड़ी है, उसे खिसका लेता है। नौकर थाली में खाना रखे, ऊपर एक थाली उल्टी रखे, प्रवेश करता है। ऊपर की थाली हटा कर दूसरी थाली मेज़ पर रख दी जाती है।]

मि० अशोक : लो भाई ऊषा तो सो गई, मैं इसे ज़रा अन्दर दे आऊँ।

[अन्दर जाते हैं, रघु जग से पानी ले कर चिलमची मे हाथ धोता है। कुछ क्षण बाद अशोक वापस आ जाते हैं, उसी तरह बच्ची को कंधे से लगाये हुए]

— : (खिसियानी हँसी के साथ) सीता को इससे बड़ा डर लगता है, कहने लगी—मेरा तो सिर फटा जा रहा है, यह कम्बख्त फिर चीख़ेगी

(फिर खिसयानी हंसी हंसते हैं।)

रघु : (रूमाल से हाथ पोछता हुआ) लाइए, मैं हाथ धो चुका हूँ, इसे मुझे दे दीजिए !

मि० अशोक : नहीं इसे नींद आ रही है, मैं इसे यहीं कौच पर लिटा देता हूँ।

[ऊषा को कौच पर लिटा कर पुचकारते हैं, लोरी देते है और थपक कर सुला देते हैं।

रघु जा कर खाने की मेज पर बैठ जाता है और मेज को तनिक अपनी ओर खिसका लेता है।]

मि० अशोक : (जग से हाथ धोते हुए) ऊषा तो सो गई, मैं जाकर जरा खीर ले जाऊँ। इतने से तुम शुरू करो।

रघु : नहीं नहीं आप आ जाइए !

[और साथ ही एक चम्मच सब्जी का मुंह में डाल लेता है।

मि० अशोक जाते है और कुछ क्षण बाद दोनो हाथो में खीर की दो तशतरियां लिये वापस आते है।]

मि० अशोक : खीर दो तशतरियाँ मैं ले आया हूँ। जरूरत पड़ने पर और ले आऊँगा (हँसते है) स्वयं ही परसने और खाने में कैसा आनन्द आता है और यदि स्वयं ही पकाया भी जाय तो फिर बात ही क्या है ?

(तशतरियां रखते है।)

— : नौकर कम्बख्त बीमार हो गया और सीता जी की तबीयत..... ?

रघु : मैं पूछता हूँ आप यह सब विवरण काहे दे रहे हैं। बैठिए, सब अच्छा है, मुझे ज़रा और दो एक जगह जाना है। सात दिन बाद यही एक इतवार आता है। राजेन्द्र के यहाँ गये हुए देर हो गई, आज मैं उससे मिल लेना चाहता हूँ।

(एक पराठा उठा उससे ग्रास तोड़ता है।)

मि० अशोक : (स्वयं भी ग्रास तोड़ते हुए) ये तँदूर के पराँठे भी क्या चीज हैं, जिसने इनका आविष्कार किया, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है।

(कुछ क्षण दोनो चुपचाप ग्रास चबाते है।)

मि० अशोक : (रोटी परे करके) तो मैंने भी बस की !

रघु : नहीं नहीं.....देखिए मैं खीर खाने लगा हूँ।

(चम्मच उठाता है।)

अशोक : (स्वयं भी चम्मच उठाते हुए) मुझे तो स्वयं भूख न थी, मैं तो तुम्हारा साथ बटाने के लिये बैठ गया। खैर,

खीर देखो, अच्छी लगे तो और ले लेना। खीर बनाने में सीता जी बस निपुण.....

रघु : पर मेरा ख्याल है कि मीठा शायद उन्होंने नहीं डाला, या यह फीकी डिश.....

मि० अशोक : (चौंक कर) हैं मीठा नहीं ! (नौकर को आवाज देते हैं।) तुलसी ! ओ तुलसी !! (फिर स्वयं ही खिसयानी हँसी के साथ) ओह ! तुलसी तो बीमार है । मेरा ख्याल है शायद गलती से मैं..... (घबरा कर) मेरा...मेरा... मतलब है कि सीता जी मीठा डालना भूल गईं । ठहरो मैं मीठा लाता हूँ ।

रघु : नही नहीं सब ठीक है आप बैठें ।

[जल्दी-जल्दी खीर के चम्मच निगल कर फिर उठ बैठता है ।]

मि० अशोक : क्यों उठ खड़े हुए ?

रघु : मैं भाई, पहले ही जरूरत से ज़्यादा खा चुका। समाचार-पत्र में नाइट एडीटर*हूँ, और जठराग्नि मेरी उतनी तेज नहीं।

(हँसता है।)

मि० अशोक : अरे भाई कुछ तो लो, यह दही तुम ने छुआ भी नहीं।

रघु : दोपहर तक दही मीठा कैसे रह सकता है (हँसता है।)

---

*नाइट एडीटर—रात के समय काम करने वाला सम्पादक।

और डाक्टर ने मुझे खट्टा दही खाने से मना कर रखा है।

[जाकर जग से हाथ धोता है, अशोक जल्दी-जल्दी खाना खाते हैं।]

रघु : (हाथ धोकर रुमाल से पोंछते हुए) अब मुझे छुट्टी दीजिए इस दावत के लिए धन्यवाद !

(कौच से हैट उठाता है।)

मि० अशोक : (उठते हुए, मुँह का ग्रास चबाते-चबाते) ठहरो मुझे भी हाथ धो लेने दो।

[जाकर हाथ धोते हैं, और कुल्ला करते हैं, फिर रूमाल से हाथ पोंछते हैं।]

रघु : (हाथ बढ़ाते हुए) अब मुझे छुट्टी दीजिए। राजेन्द्र के यहाँ मुझे जाना है।

मि० अशोक : (उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दरवाजे की ओर चलते हुए) चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ, ऊषा तो सो रही है, मैं सीता जी के लिए कोनीन और एस्पिरीन लेता आऊँगा।

(दोनों चलते हैं।)

पर्दा

तीसरा अंक

[यद्यपि मि० अशोक से उसने यही कहा कि वह राजेन्द्र के घर जा रहा है, पर उनसे अलग होकर रघु इस सोच में पड़ गया कि वह सचमुच वहां जाय या न जाय। घर में सुबह-सुबह झगड़े की सूरत मे जो अपशकुन हो गया था, उसका कुपरिणाम तो उसने अशोक के घर प्रत्यक्ष ही देख लिया था। भूखी आंते उसे आगे बढ़ने से भरसक रोक रही थीं, पर मन कहता था कि अब न जाने फिर कितने दिन पर भेंट हो, क्यों न मिलते ही चलो न हो खाना वहीं खा लेना। और मन ही की बात मान, वह राजेन्द्र के घर की ओर चल पड़ा था। चल तो पड़ा, पर सन्देह अभी छिपा कहीं कह रहा था, कि वह घर न मिलेगा और तब उसके सामने वह सारा लम्बा मार्ग घूम-घूम जाता जो उसे राजेन्द्र के घर से अपने घर तक ले जाता था।

इसी असमंजस में वह चलता गया, मुड़ नहीं सका और वहां पहुँच गया। अब जब पहुँच गया तो बिना देखे कैसे बने ? सो वह सीढ़ियां चढ़ने लगा।

इधर अपने बीमार बच्चे की चारपाई के पास राजेन्द्र बैठा है। ड्राइंग-रूम उसका अव्यवस्थित दशा में है, दवाइयों के अधिक्य से छोटा-मोटा अस्पताल बना हुआ है। अँगीठी पर शीशियां, मेज पर शीशियां और

अलमारियों पर शीशियां; मेज़ कुर्सियां, मेज़ की किताब और कुर्सियों की गद्दियाँ सब अस्तव्यस्त पड़ी हैं।

तभी रघु कमरे में प्रवेश करता है और पर्दा उठता है।]

रघु : सुनाओ भाई क्या हाल हैं आजकल ?

राजेन्द्र : [लम्बी सांस भर कर] चल रहे हैं किसी तरह ?

रघु : (व्यंग-पूर्ण हँसी से) मि० अशोक के घर हमारी तो दावत थी। वहां खूब जी भर कर (हँसता है) खूब जी भर खाना खाने के बाद हमने सोचा तुम्हें भी मिलते चलें।

[ज़ोर से हँसता है, बिस्तर पर पड़ा बीमार बच्चा रो उठता है।]

राजेन्द्र : आ, आ, मेरे पास आ !

(उसे उठा कर कन्धे से लगा लेता है)

— : (उठते हुए, रघु से) अपना-अपना भाग्य है भाई, तुम्हें दावतें खाने को मिलती हैं और यहाँ दो दिन से प्रायः उपवास है।

रघु : (आश्चर्यान्वित होकर) उपवास ?

राजेन्द्र : बच्चा दो दिन से बीमार है !

रघु : दवा क्यों नहीं दी ?

राजेन्द्र : दवा हो रही है, दो बार डाक्टर को दिखा चुका हूँ और औषधियाँ...

[हँसता है और अँगीठी और मेज़ की ओर संकेत करता है]

रघु : श्रीमती जी कहां हैं ?

राजेन्द्र : वह किधर किधर हो सकता है। डाक्टर को बुलाने गया है।

रघु : क्यों कुछ ज़्यादा तबीयत खराब है इसकी ?

राजेन्द्र : सारी रात नहीं सोया; चिड़चिड़ा हो गया है, ज्वर अभी कम नहीं हुआ, और.....

(रघु हँस पड़ता है।)

राजेन्द्र : (हैरानी से) क्यों ?

रघु : मुझे अपने आप पर हँसी आती है। मैंने सोचा था—तुम्हारे घर में ही कुछ पेट की आग बुझा लेंगे, पर देखता हूँ तुम स्वयं .....

राजेन्द्र : क्यों अशोक के घर तुम्हारी दावत जो थी ?

रघु : हाँ दावत तो थी और इसी दावत की खुशी में हमने सुबह का दूध भी नहीं पिया, पर अब इस भाग्य को क्या कहा जाय ? वहाँ श्रीमती अशोक कुछ अस्वस्थ थीं—रात दो बार उठकर बच्ची को दूध पिलाने के कारण ? और तँदूर के—मि० अशोक के कथनानुसार—स्वादिष्ट परौंठों का मुझे अभ्यास नहीं।

राजेन्द्र : (व्यंग से हँसता है।) ये अभिजात वर्ग की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ !...तुम खड़े क्यों हो, उधर कुर्सी पर बैठ क्यों नहीं जाते, मैं बैठूँगा तो यह फिर रोने लगेगा। सुबह से ले कर घूम रहा हूँ। अभी लिटाया था कि फिर रोने लगा, मेरे तो कंधे रह गये हैं। बैठ जाओ तुम !

रघु : मैं ठीक हूँ !

(उसके साथ-साथ घूमता है)

राजेन्द्र : मैं सोचता हूँ रघु, मनुष्य को किसी तरह भी संतोष नहीं—अशिक्षित पत्नी थी तो रोते थे, शिक्षित है तो रोते हैं।

(हँसता है।)

(कुछ क्षण दोनों चुप चाप घूमते हैं।)

राजेन्द्र : (कुछ क्षण बाद) मैं सोचता हूँ, शिक्षा का जो घातक प्रभाव हमारे यहाँ की स्त्रियों पर दिन-प्रति दिन पड़ रहा है, यह उन्हें किधर ले जायगा और उनके साथ हम गरीबों को भी (हँसता है—आभिप्राय पत्नियों से है।) चाहिये तो यह कि ज्यों ज्यों मनुष्य अधिक शिक्षित होता जाय, वह अधिक संस्कृत, अधिक सौम्य, अधिक गम्भीर.....

[सीढ़ियों पर खट-खट की आवाज़ सुनाई देती है और बायीं ओर के दरवाज़े से श्रीमती राजेन्द्र विद्युत-सी बनी प्रवेश करती हैं—तीखे नक्श, गोरा मुख (पाउडर+सुर्खी) कंधों तक नंगे बाजू, पतली कमर, कानों में सुनहरी बुन्दे, भड़कीले रंग की साड़ी! और चाल जैसे नपी-तुली पर चंचल!

श्रीमती राजेन्द्र : क्या हाल है उम्मी का?

राजेन्द्र : (अन्यमनस्कता से) ज्वर की तीव्रता से शिथिल सा, चेतना हीन सा.....

श्रीमती राजेन्द्र : तो डाक्टर को नहीं बुलाया? मैं पूछती हूँ, आप से एक बच्चे की.....

(रघु खाँसता है।)

श्रीमती राजेन्द्र : (सहसा घूम कर) ओह! मि० रघुनन्दन हैं। (ओठों पर मादक मुस्कान आ जाती है।) नमस्कार! सुनाइए

क्या हाल चाल हैं, बहिन अब हमारे लिए लायेंगे या नहीं ?

(रघु केवल जरा हँस देता है।)

श्रीमती राजेन्द्र : आज आप एस० आर० सभा की कंसर्ट देखने आयेंगे या नहीं। मेरा ख्याल है, यह कंसर्ट अत्यन्त सफल रहेगी। मिस शशि और मिस उमा भी नृत्य में भाग ले रही हैं।

रघु : उमा !

श्रीमती राजेन्द्र : प्रो० राजलाल की लड़की, आप उन्हें नहीं जानते, वह तो प्रसिद्ध कलाकार हैं, नृत्य कला में.....

रघु : मैंने सुना है, पर देखने का अवसर नहीं मिला, रात का सम्पादक एक विचित्र संसार का जीव होता है, जिसकी सुबह, शाम के साथ आरम्भ होती है और काम करने का समय भी.....

श्रीमती राजेन्द्र : पर आज तो इतवार है और प्रोग्राम अत्यन्त दिलचस्प.....।

रघु : आप भी भाग ले रही हैं ?

श्रीमती राजेन्द्र : (कुछ शिकायत के से स्वर में) मुझे भी उन्होंने घसीट लिया (हँसती है।) हमारे चौधरी साहब, वही जो हमें नृत्य की शिक्षा देते हैं, अनुरोध करने लगे। चैरैटी कंसर्ट* है नहीं तो बी की तबीयत दो दिन से ठीक नहीं (घूम कर, पति से) मैं कहती हूँ, आपने डाक्टर को क्यों नहीं बुलवा भेजा, मुझे तो अभी वापस जाना है, खाना तो मैं वहीं मिसेज दयाल के यहाँ खा

*चैरेटी कंसर्ट = धर्मार्थ कंसर्ट

लूँगी, आप.....रसिया ने बनाया है या नहीं ?

राजेन्द्र : रसिया तो.....।

श्रीमती राजेन्द्र : मैं जरा कपड़े बदल आऊँ ।

(खट-खट दूसरे कमरे में चली जाती है ।)

राजेन्द्र : (खिसियानी हँसी के साथ) लो भई तुम्हें तो निमन्त्रण मिल गया, तुम्हें तो आज यह कंसर्ट ज़रूर देखनी चाहिए ।

रघु : (राजेन्द्र की बात का उत्तर न देकर) यह बच्चे का सिर तुम्हारे कंधे से लुढ़क गया है, थक गये हो तो मुझे दे दो !

राजेन्द्र : (हँसते और शून्य में देखते हुए) संतोष करो, इतनी देर खिलाना पड़ेगा कि ऊब जाओगे, जरा भाभी को आने दो । कहो कोई फैसला किया है या नहीं ?

रघु : मैं घबराता हूँ ।

राजेन्द्र : (जैसे अपने से) घबराने ही की बात है !

(व्यङ्ग से हँसता है—कुछ क्षण दोनों चुप रहते हैं । फिर)

रघु : मैं पूछता हूँ तुम लोग बच्चे का ध्यान क्यों नहीं रखते । भाभी के दूध में तो कोई दोष नहीं !

राजेन्द्र : वह इसे दूध पिलाती ही कब है ?

रघु : क्या कहा, भाभी इसे दूध नहीं पिलातीं ?

राजेन्द्र : कभी नहीं, उसने आरम्भ ही से नहीं पिलाया ।

रघु : पर इसी लिए तो बच्चा अस्वस्थ रहता है । माँ का दूध न पीने से रोग के आक्रमण को सहने की शक्ति कम हो जाती है ।

राजेन्द्र : उसकी बला से ।

रघु : क्या कहते हो ?.....भाभी...माँ की ममता...

राजेन्द्र : (व्यंग से हँसता है।) सब पुरानी बातें है।

(दोनों फिर कुछ क्षण चुप रहते हैं।)

राजेन्द्र : (दार्शनिक) इन चमकदार मोतियों का उपयोग कितना है रघु, तुम नहीं जानते—तुम इन्हें दूर ही से प्यार की नजरों से देख सकते हो; चाहो तो इन्हें पास बैठा सपनों के संसार बसा सकते हो; इनकी दमक से अपनी आँखें जला सकते हो; पर जीवन के खरल में पीस, इन्हें किसी काम में ला सकोगे, इसकी आशा नहीं।

(लम्बी सांस लेता है।)

रघु : यह तुम्हारी दुर्बलता है।

राजेन्द्र : तुम इसे दुर्बलता कहते हो, मैं इसे दूरदर्शिता समझता हूँ। पत्थर को समझाओ तो सिर दर्दी लो, उससे टकराओ तो माथा फोड़ो। हमने एक नया मार्ग निकाल लिया है.....

रघु : नया मार्ग !

राजेन्द्र : बस, उसे पूजा की चौकी पर बिठा दो !

रघु : (हँसता है।) मार्ग पुराना है पर तुम फेंक सकते हो।

राजेन्द्र : (व्यंग से मुस्करा कर) बस यही पुरुषत्व हम लोगों में शेष रह गया है, एक बार जो बोझा उठा लिया, उसे ढोये जाते हैं।

(हँसता है।)

रघु : पर तुमने पहिले कभी नहीं बताया !

राजेन्द्र : चुप रहना भी इस खेल का एक हिस्सा है।

(फिर हँसता है।)

[श्रीमती राजेन्द्र साड़ी बदल कर अन्दर से आती है—रंग के ऊपर जैसे और रंग चढ़ा कर !]

श्रीमती रा० : (अपने पति से) रसिया को भेज कर मिसेज़ दयाल के यहाँ मुझे बेबी के सम्बन्ध में पता दे देना, मुझे चिन्ता रहेगी। चौधरी साहब का अनुरोध है कि वाद्य यन्त्रों के साथ मैं फिर एक बार रीहर्सल कर लूँ।

(राजेन्द्र उत्तर नहीं देता)

राजेन्द्र : अच्छा आप तो आयेंगे न मि० रघु ?

रघु : (हँस कर) मैं प्रयास करूँगा।

श्रीमती रा० : प्रयास नहीं, अवश्य आइएगा। मैं विश्वास दिलाती हूँ, आपको निराश न होना पड़ेगा। शशि, उमा, फिर संगीत, और प्रहसन (मुड़ कर अपने पति से उल्लसित स्वर मैं कहती हूँ—चौधरी साहब मेरे सम्बन्ध में बड़े आशाचित हैं। कहते हैं, मैं उनकी सब छात्राओं से बाज़ी ले जाऊँगी। (दोनों हाथ भींच कर हँसती है—मीठी मादक हँसी फिर जैसे कुछ याद आ गया है।) और हाँ, मेरे ज़िम्मे तो उन्होंने कुछ टिकट भी लगा दिये हैं। (जेब से टिकट निकालती है।) तो आप के ज़िम्मे कितने लगाऊँ ? (हँसती है।) देखिए मैं आपको दंड नहीं दूँगी, जितने आप खुशी से लेना चाहें (हँसती है) तो कितने काटूँ (फिर स्वयं ही) अच्छा, पाँच आपके ज़िम्मे रहे, दो रुपये से कम में तो आप के मित्र क्या जाना पसन्द करेंगे ?

रघु : नहीं वे इस बात को मान-अपमान का प्रश्न नहीं बनाते।

(हँसता है।)

श्रीमती रा० : पर यह तो आपका अपमान है और मैं आपका अपमान नहीं कर सकती (हँसती है।) तो काटूँ पाँच ?

राजेन्द्र : तुम पच्चीस ही रघु के नाम काट सकती हो।

(शरारत से हँसता है)

रघु : अरे भाई, मैं पाँच कहाँ बेच सकता हूँ। अच्छा, मैं पाँच रुपये का एक ही टिकट ले लेता हूँ।

श्रीमती रा० : (उल्लास से) ओह, धन्यवाद ! (टिकट काटती है।) और यह रुपया-रुपया वाले पाँच आपके मित्रों के लिए।

रघु : (खिसियानेपन से हँसता है।) मैं कहता हूँ, भाभी, यह जूत मुझी पर पड़ेगा।

श्रीमती रा० : मैं विश्वास दिलाती हूँ, तुम्हें और तुम्हारे मित्रों को इस खर्च का दुःख न होगा। कितनी तैयारी से यह कंसर्ट हो रही है ? और खर्च निकाल कर इस की सब बचत हिसार के अकाल-पीड़ितों के लिए जायगी। कुछ उन बुभुक्षित किसानों का भी ख्याल करो।

(टिकट फाड़ कर देती है।)

— : ये लीजिए पाँच टिकट, और.....रुपये (हँसती है।) मुझे तो देने ही पड़ेंगे, आप जब सुगमता से...

(हँसती है।)

रघु : पर अब जब आपने टिकट फाड़ दिये.....

राजेन्द्र : और फिर यह तो हिसार के अकाल-पीड़ितों.....

रघु : (खिसियानी हँसी से) ये लीजिए नोट ? (जेब से नोट निकाल कर देता है।) मैं उधार पसन्द नहीं करता।

श्रीमती राजेन्द्र : धन्यवाद ? सभा आपकी अत्यन्त कृतज्ञ होगी। तो अब तो आप आएँगे ही, सीट मैं अगली पंक्ति में आप के लिये रिज़र्व* (सुरक्षित) करा छोड़ूँगी। काश आज बहिन जीवित होती ?

(रघु दीर्घ निश्वास छोड़ता है।)

— : (घूम कर अपने पति से) मैं सोचती हूँ, यदि आप भी आज चल सकते। चौधरी साहब कहते थे कि पहले से मैंने बहुत उन्नति की है; डाक्टर जो बताए, उसकी सूचना मुझे भिजवा देना। भूलना नहीं मुझे चिन्ता रहेगी (रघु से) अच्छा तो कंसर्ट में.....

(हँसती हुई चली जाती है।)

रघु : तुम आज न चलोगे राजेन्द्र ?

राजेन्द्र : मेरे जिम्मे दूसरी ड्यूटी ?

[दोनों हँसते हैं। एक व्यंग पूर्ण और दूसरा खिसियानी हँसी ! फिर कुछ क्षण दोनों मूक रहते हैं और फिर रघु एक अँगड़ाई लेकर उठने लगता है कि नौकर प्रवेश करता है।]

रसिया : बाबू जी ?

राजेन्द्र : (घूम कर) डाक्टर साहब मिले रसिया ?

रसिया : आ रहे हैं बाबू जी ?

[और दूसरे क्षण अपने मोटे भारी भरकम शरीर को लिये डाक्टर साहब प्रवेश करते हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उनकी साँस फूल गई है; माथे पर तेवर पड़ गए हैं और

चेहरे की झुर्रियां सिकुड़ गई ह। हट उतार कर रखत ह और गहरी साँस लेते हैं —]

डाक्टर : (मुस्करा कर, जबकि झुर्रियाँ फैल जाती हैं।) दिये तले अँधेरा है ! (हँसता है।) मोटा होता जा रहा हूँ, दुनिया भर का इलाज करता हूँ और अपना..... (हँसता है।) सैर तक का समय नहीं मिलता। (दरवाज़े की ओर देखता है। उन सीढ़ियों का ध्यान आ जाता है, जो अभी बड़ी कठिनाई से समाप्त हुई हैं।) मैं पूछता हूँ, आप ऊपर की मंजिल में क्यों रहते हैं ?

राजेन्द्र : (हँसकर) सब के पास डाक्टर साहब, कोठियाँ तो नहीं हो सकतीं और न मोटरें !

डाक्टर : अच्छा है, नहीं तो मकान की सीढ़ियाँ भी आप मुश्किल से चढ़ सकते।

(सब हँसते हैं।)

— : बच्चे की हालत कुछ सुधरी या नहीं ?

राजेन्द्र : रत्ती भर भी नहीं, डाक्टर साहब, बल्कि ज्वर की तीव्रता और भी बढ़ गई है, खाँसी भी है, और जुकाम भी।

[डाक्टर थर्मामीटर निकाल कर बच्चे की बगल में रखता है।]

— : आप जितने अप्राकृतिक साधन प्रयोग में लाते जायेंगे, बच्चे उतने ही दुर्बल होते जायेंगे। आखिर क्या कारण है कि अपने सुन्दर, लम्बे-तगड़े बलिष्ठ पूर्वजों के हम बौने से अवशेष मात्र रह गये हैं—हमारे बच्चों को हवा साफ नहीं मिलती और दूध मिलता है बक्सों

में बन्द ! हँसना, किलकारी मारना वे नहीं जानते, रोना-चीखना वे नहीं जानते !!

(थर्मामीटर निकाल कर देखता है ।)

— : १०३ है, ज़रा लिटा दीजिए !

[राजेन्द्र बच्चे की चारपाई पर लिटा देता है। डाक्टर उसका निरीक्षण करता है ।]

— : आखिर क्या कारण कि देहात में हमें छै-छै सात-सात फुट लम्बे, तगड़े, ऊँचे, चौड़ी चकली छातियों वाले जाट मिलते हैं । और हमारे यहाँ...(हँसता है ।) इसे कब्ज़ तो नहीं रहती ?

राजेन्द्र : जी क़ब्ज़ तो इसे परसों ही से है !

डाक्टर : (गले को देखता हुआ) अब यह बच्चा जब बाप बनेगा तो इसके पुत्र...(हँसता है ।) ...हुँ,...आप इसे हवा में लेकर न फिरें इसे खसरा हो गया है ।

राजेन्द्र : (घबरा कर) ख़सरा !

डाक्टर : घबराने की कोई बात नहीं । अपनी अवधि पाकर अपने आप ही दूर हो जायगा ।

राजेन्द्र : औषधि ?

डाक्टर : मिक्स्चर मैं भेज दूँगा, पर ख़सरे की सब से बड़ी दवा तो सावधानी है । ब्रांकाइटिस और निमोनिया का डर रहता है । उसके लिए पाउडर भेजूँगा । मिक्स्चर से एक घंटा बाद देते रहिए । दिन में तीन बार !

(हैट उठा कर चलते हैं ।)

— : कल मैं फिर आकर देख जाऊँगा, (रसिया से) चलो मेरे साथ, वहाँ से दवाई लेते आना ।

[बच्चा रोने लगता है, राजेन्द्र उसे फिर उठा कर घूमने लगता है।]

डाक्टर : (दरवाजे से) हवा में लेकर न घूमिए। निमोनिया हो गया तो मुश्किल हो जायगा।

(नौकर वो लेकर चला जाता है)

रघु : तुम इसे हवा में न लिये फिरो राजेन्द्र, चारपाई पर सुला कर लिहाफ़ ओढ़ा दो !

राजेन्द्र : (लिटाते हुए) बिस्तर पर तो इसे जैसे काँटे चुभते हैं। लेटा नहीं, कि रोने लग जाता है। मैं तो थक गया हूँ।

[बच्चे को लिटाता है, वह लेटते ही रोने लगता है।]

— : यह न लेटेगा, तुम ज़रा उठ कर खिड़की लगा दो !

[रघु उठ कर खिड़की लगाता है, तभी खट-खट करती श्रीमती राजेन्द्र वापस आती हैं।]

श्रीमती राजे० : मुझे अभी डाक्टर मिले थे, कहते थे ख़सरा हो गया है, सावधानी की जरूरत है, तो अब रसिया से कहना कि खाना न बनाये, बच्चे के लिए नौकर की जरूरत होगी। खाना आज होटल से मँगा लेना, मेरा ब्रोच* यहीं रह गया। उसे लेने आई हूँ, कहीं गुम ही न हो गया हो।

(खट-खट करती हुई अन्दर चली जाती हैं।)

रघु : (अँगड़ाई लेकर उठता है।) अच्छा भाई मुझे तो आज्ञा दो, बेहद भूख लग रही है। खाने का समय तो रहा नहीं, पर अनारकली से लस्सी का गिलास पी लूँगा।

---

* साड़ी का पिन

तुम भी, मैं कहता हूँ, दूध मँगा लेना। शाम का खाना, न हुआ, मैं भिजवा दूँगा।

(श्रीमती राजेन्द्र आती हैं।)

श्रीमती राजे० : मिल गया, मैं तो डर ही गई थी, (रघु से) आप जा रहे हैं, तो चलिए मिसेज दयाल के घर तक साथ रहेगा।

रघु : लेकिन भाभी, यह काम जो तुमने मेरे जिम्मे लगा दिया है—मुझे तो अभी पाँच आदमी फँसाने हैं।

श्रीमती राजे० : अरे तो मिसेज दयाल का घर तो मार्ग ही में है।

रघु : चलिए, (राजेन्द्र से) अच्छा भाई फिर...

श्रीमती राजे० : मेरी चिन्ता आप न कीजिएगा, रात मुझे देर हो जायगी। शाम का खाना भी मैं वहीं मिसेज़ दयाल के यहाँ खा लूँगी और बच्चे का ध्यान रखिएगा! सूचना देना मुझे न भूलिएगा!! मुझे चिन्ता रहेगी।

[दोनों जाते हैं और प्रो० राजेन्द्र बच्चे को कन्धे से लगाये, सिर नीचा किये घूमते हैं।]

पर्दा

चौथा अंक

पहला दृश्य

[हिसार के अकाल पीड़ितों के हितार्थ एस० आर० सभा की चैरेटी कन्सर्ट का समय यद्यपि साढ़े पांच बजे रखा गया था, तो भी भारतीयों की अपनी निजी परम्परा के अनुसार वह साढ़े छः बजे आरम्भ हो पायी। हाल दर्शकों से खचाखच भर गया। तालियाँ और सीटियाँ और दूसरे कई प्रकार के शोर इस बात की सूचना देने लगे कि लोग टिकट ख़रीद कर भी आये हैं। लेकिन कलाकारों को कुछ पारिश्रमिक तो दिया गया नहीं, इसलिए वे बड़े आराम से अपना वक्त लेकर रंगमंच पर पहुँचे। क्योंकि प्रोफेसर राजलाल और उनकी पत्नी भी कंसर्ट देखने आ रहे हैं, इस लिए उमा को अपने माता-पिता के साथ आने के कारण देर हो गई। मिसिज़ राजेन्द्र, मिसिज़ दयाल और उन की सहेलियों को तैयार कराने में पौन घंटा देर से पहुँचीं। यही दशा दूसरे कलाकारों की रही। उनकी अनुपस्थिति में बड़े बेतुकेपन से 'वन्दे मातरम्' का गाना गाया गया। गाने वालों को गाने के बोल स्मरण न थे, उच्चारण तो ऐसा कि रहे राम का नाम! —सुर न लय और न ताल! बीच ही में एक लम्बी सी 'वन्दे मातरम्' कर के उसे समाप्त कर दिया गया। उसके बाद मिस शशि का कथाकली नृत्य था किन्तु मिस शशि का कुछ पता न था, इसलिए उनके स्थान पर किन्हीं श्री चोपड़ा ने पशु पक्षियों की बोलियाँ

सुनाई। तत्पश्चात् संगीत और आर्केस्ट्रा की जगह किन्हीं तथा-कथित रेडियो आर्टिस्ट का गाना हुआ जो हाल में किसी ने नहीं सुना। सभा के सेक्रेट्री मिस्टर शर्मा बुरी तरह घबरा रहे थे कि यदि उन के प्रमुख कलाकार न आये तो उन्हें मुँह दिखाने की जगह न रहेगी। तभी मिसिज़ राजेन्द्र के साथ शशि आ गई और मिस्टर शर्मा के सूखे धानों पर पानी पड़ गया। मिसिज़ राजेन्द्र को तत्काल तैयार होने के लिये कह कर उन्होंने कवि श्री 'पपिहा' को अपना गीत सुनाने को कहा। पर नृत्य देखने के लिए दर्शक इतने उत्सुक थे कि कवि 'पपिहा' की 'पी' 'पी' किसी ने नहीं सुनी। तब हार कर पर्दे के एक ओर रखे माइक के सामने एस० आर० सभा के सेक्रिट्री मि० शर्मा स्वयं आये।

मि० शर्मा : (माइक्रोफोन में) आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सभा के सभी प्रमुख कलाकार रंग मंच पर आ गये हैं और क्षण भर बाद आपको श्रीमती राजेन्द्र का कथाकली नृत्य देखने को मिलेगा।

[इस पर अचानक दर्शक मंडली में प्रथम पंक्ति में बैठा एक युवक ताली पीट उठता है और हम देखते हैं कि यह तो रघु है, धीरे धीरे दूसरे लोग भी उसके साथ ताली बजाने लगते हैं इस करतल ध्वनि से प्रोत्साहित होकर मि० शर्मा तनिक और जोश से कहने लगते हैं]

— : सज्जनो, यह कंसर्ट मात्र मनोरंजन की चीज़ नहीं, इसके पीछे महान उद्देश्य काम कर रहा है। वे कलाकार, जो सहस्रों रुपये लेने पर भी किसी साधारण कंसर्ट में सम्मिलित न हों, एस० आर० सभा की अपील पर हिसार के अकाल पीड़ितों के सहायता को आ पहुँचे हैं। श्रीमती राजेन्द्र के बाद

मिस उमा, मिस शशि, कुमारी कजला चौधरी, कुमारी प्रतिभा घोष आपको अपने नृत्य तथा संगीत से प्रभावित करेंगी।

(इस पर फिर करतल-ध्वनि होती है)

— : सज्जनो, आप में बहुत से मुफ्त ..मेरा मतलब है कि पासों पर यह कंसर्ट देखने आये हैं...

पिछली बैंचों से आवाज़ : हमने तो नक़द टके दिये हैं।

(हाल में ठहाका पड़ता है)

मि० शर्मा : (अप्रतिभ से होकर आवाज़ को ऊँचा करते हुए) उसके लिए हम आपके हृदय से आभारी हैं। हम ही नहीं, हिसार के अकाल पीड़ित आभारी हैं, जिनके बभुक्षित पिंजर दो मुट्ठी अन्न के लिए तड़फड़ा रहे हैं। सज्जनो, कंसर्ट की समाप्ति पर सभा के सदस्य झोलियाँ फैलाये आपके पास पहुँचेंगे, आपसे प्रार्थना है कि आप दान से उनकी झोलियाँ भर दें।

पिछली बैंचों से आवाज़ : पासों वाले तो उस समय तक मीठी नींद का आनन्द ले रहे होंगे।

[इस पर हाल में और भी ऊँचा ठहाका पड़ता है। मि० शर्मा रग बदलता देखकर दर्शकों को अब और अधिक देर तक प्रतीक्षा में न रखने का निर्णय करते है और अपनी घबराहट छिपाते हुए बड़े नाटकीय ढंग में घोषित करते हैं]

मि० शर्मा : अब मैं और अधिक आप के और रसानुभूति के मध्य रुकावट न बनूंगा। 'पपिहा' जी का गीत समाप्त हुआ कि श्रीमती राजेन्द्र अपने अनुपम नृत्य से आप

लोगों को बतायेंगी कि भारतीय कला किन ऊँचाइयों पर पहुँच सकती है।

[एक ओर हट जाते है। पपिहा जी खँखार कर अपना गीत आरम्भ करते है, पर कोई उनका गीत नहीं सुनता। सीटियां, तालियां, फबतियां हाल में चलती है। हार कर वे अपना गीत समाप्त कर, हाथ जोड़ कर एक ओर हट जाते है। पर्दा गिर जाता है उस पर मोटे मोटे स्वर्ण अक्षरों में लिखा है—एस० आर० सभा का चैरेटी कंसर्ट—और उसके पीछे वाद्य यंत्र बजने लगते है जो इस बात के सूचक है कि अब श्रीमती राजेन्द्र पायल की झंकार से स्टेज पर प्रवेश करने वाली है। दर्शक बड़ी उत्सुकता से पर्दे के उठने की प्रतीक्षा करते है, पर श्रीमती राजेन्द्र कदाचित अभी तैयार नहीं हुईं, इसलिए कुछ क्षण की चुप्पी के पश्चात् हाल में फिर हो-हल्ला होने लगता है, इसी बीच में पहले दर्जे के दरवाजे से आगे आगे उमा और उसके पीछे प्रो० राजलाल और उसकी मां प्रवेश करती है। उमा उन्हें प्रथम पंक्ति में एक खाली कौच पर बैठा देती है। तभी पर्दा उठता है और थिरकती हुई श्रीमती राजेन्द्र प्रवेश करती है, उमा एक ओर से स्टेज पर चढ़ कर नेपथ्य में चली जाती है।

श्रीमती राजेन्द्र का नृत्य बड़ा सफल रहता है। दर्शक उन्हे मंच से जाने ही नहीं देते। रघु तो ताली पीटने में कुर्सी से उठ उठ जाता है। दो बार वे स्टेज पर आती है।

श्रीमती राजेन्द्र के बाद शशि गाना गाती है। फिर उमा का नृत्य होता है और दर्शकों की प्रसन्नता का वार पार नहीं रहता।

उमा भी दो बार दो तरह का नृत्य दिखाने पर विवश होती है। उसके नृत्य के मध्य प्रो० राजलाल और उनकी

पत्नी उतना उमा की ओर नहीं देखते जितना रघु की ओर। एक नृत्य के समाप्त होने पर रघु जिस जोश से करतल ध्वनि कर उठता है और दर्शकों के "वंसमोर" में अपना स्वर मिलाता है, उससे पति पत्नी बड़े प्रसन्न होते हैं।

जब उमा का नृत्य समाप्त होता है, तो प्रोफेसर राजलाल और उनकी पत्नी उठते हैं, और हाल से निकल जाते हैं। क्योंकि अपने घर में लाला गिरधारीलाल और उनकी पत्नी बैठे उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं और प्रो० राजलाल समय पर वहाँ पहुँच जाना चाहते हैं]

पर्दा

नोटः—इस दृश्य के लिए स्टेज पर दर्शक-हाल बनाने और एक और रंगमंच तैयार करने के स्थान पर दर्शकों में ही नाटक के अभिनेताओं को मिला कर काम चलाया जा सकता है। बड़े पर्दे के पीछे एक पतले मलमल के पर्दे पर एस० आर० सभा का नाम लिख कर रंगमंच पर एस० आर० सभा की कंसर्ट दिखाई जा सकती है। और श्रीमती राजेन्द्र तथा उमा के नृत्यों के अतिरिक्त आवश्यकता के अनुसार प्रोग्राम बढ़ाया घटाया जा सकता है।

दूसरा दृश्य

[अँगीठी पर रखे हुए छोटे से टाईम-पीस की सुईयों ने अभी अभी ९ बजाये हैं। इतवार का दिन समाप्त हो गया, पर यह दिन यथेष्ट महत्त्वपूर्ण रहा है। साधारणतया केवल रघुनन्दन को छोड़ कर घर के सब व्यक्ति इस समय तक चारपाइयों पर पड़ चुके होते हैं। दुकानदार होने के नाते ला० गिरधारीलाल की कोई बड़ी साहित्यिक अथवा कलात्मक प्रवृत्तियां तो हैं नहीं, बस, सुबह उठना, नहा खाकर दुकान पर जा बैठना और फिर सारा दिन ग्राहकों से सिर खपाने के बाद आकर खाना खाकर सो रहना—कई वर्षों से यही क्रम उनका चला आ रहा है। कारोबारी महत्त्वाकाँक्षा अवश्य उन्हें है, दुकान को वे और भी बढ़ी-चढ़ी देखना चाहते हैं, पर रात को जल्दी सो जाना उनकी इस आकाँक्षा के मार्ग में रुकावट नहीं बनता। रही उनकी पत्नी—भाभी—तो वे अवश्य सारा दिन एकान्त में बिताने के कारण रुपया में कुछ आने साहित्यिक हो गई हैं, पर इधर जब से उनके लड़के-बाले हो गये हैं, उन्हें अपनी साहित्यिक मनोवृत्ति को सींचने का अवसर नहीं मिला। दिन भर में रसोई के, सफ़ाई के, बच्चों को खिलाने-पिलाने और मनाने के काम में उनका तन मन इतना शिथिल हो जाता है कि साँझ पड़े जब खाना खा-खिला कर वे कोई पुस्तक सिरहाने रख, इस ख्याल से बच्चे को लेकर लेटती हैं कि उसे सुला कर पढ़ेंगी तो बच्चे को सुलाते-सुलाते स्वयं भी सो जाती हैं, कभी उसके पहले और

कभी उसके बाद ! क्योंकि बच्चा यदि सो भी चुका हो तो भी गर्म लिहाफ़ उन्हें बाहर निकलने नहीं देता और पुस्तक बेचारी पड़ी सिरहाने, सर्दी में ठिठुरा करती है। रहा रघु, तो उस बेचारे की सुबह ही रात के ९ बजे आरम्भ होती है। जब सब सोने लगते हैं तो वह दफ्तर को जाने के लिये तैयार होता है। किन्तु आज ९ बज गये है। और घर के प्रायः सभी लोग जाग रहे हैं।

बात यह है कि भाभी आज रामप्रसाद को लेकर प्रो० राजलाल के घर हो आई हैं। उनकी पत्नी से उनका सहेलपना भी है और उमा वैसे भी उन्हें अच्छी लगती है। फिर भाई साहब की अपेक्षा भाभी अधिक नीतिज्ञ हैं। एक सुसम्पन्न घराने में रिश्ता करना, वे जानती हैं, भाई साहब के कारोबार को लाभ पहुँचा सकता है। और बेकार रामप्रसाद को कहीं न कहीं काम दिला सकता है। इसी लिए वे प्रो० राजलाल की पत्नी को आश्वासन दे आई है कि रिश्ता वे अपने पति को जोर देकर भी स्वीकार करा लेंगी, और रघु की ओर से तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। और उन्होंने प्रो० साहब की पत्नी से कह दिया था कि 'शुभस्य शीघ्रम' चूंकि सिद्धान्त अच्छा है, इसी लिए रात ही को जब उनके 'वे' (अभिप्राय गिरधारीलाल से है।) खाना वाना खा लें तो वे भी प्रो० साहब को भेज दें। और तभी यह तय हो जायगा। और इस बात का वादा प्रो० साहब की पत्नी ने भी किया था।

इसी लिए इस समय प्रो० साहब के आगमन की प्रतीक्षा में सब जाग रहे हैं और आँगन से जागृति का आभास बराबर मिल रहा है क्योंकि मुन्नी को तो नींद लग रही है और वह सोने के लिए शोर मचा रही है, नन्हा भी उसके स्वर से स्वर मिला कर समर्थन कर रहा है, पर भाभी तो भाई साहब से बातें कर रही हैं, इसलिए उनके

पास समय कहाँ ? तभी उठने के कुछ क्षण बाद आँगन से उनकी आवाज़ आती है—

— : वे बिरजू, ज़रा लेजा मुन्नी को, जाकर सुला अन्दर !

[और मुन्नी को लिए हुए बिरजू प्रवेश करता है और मुन्नी को पलंग पर सुलाता है।

ड्राइंगरूम सुबह की अपेक्षा कुछ ज़्यादा साफ है। साधारणतया इस समय तक तो बच्चे इसे साफ नहीं रहने देते और कोई वस्तु भी अपने स्थान पर पड़ी नहीं रहती, पर आज साँझ को इसे फिर एक बार साफ करके कुंडी लगा दी गई थी।

नौकर लिहाफ़ देकर जब वापस जाता है तो भाभी भाई साहब के साथ बातें करती दाख़िल होती है।]

भाई साहब : मैं कहता हूँ मेरा क्या है, जिस बात में तुम सब राज़ी, उसी में मैं राज़ी ! आख़िर समय तो उसे तुम्हारे साथ ही काटना है !

भाभी : मैं तो फिर यही कहूँगी कि एक बार जुआ खेल कर हम देख चुके हैं फिर दोबारा.....

भाई साहब : (दार्शनिक भाव से) पर जुआ तो यह भी है।

भाभी : पर इसमें हानि की उतनी सम्भावना नहीं !

भाई साहब : यह कौन जानता है, मनुष्य जो चाहता है, वह कब हुआ है। और हानि तो सदैव उधर ही से होती है, जिधर से उसके होने की तनिक भी सम्भावना नहीं होती। (हँसते हैं।) पर मेरी बात छोड़ो, रघु की इच्छा है, तुम्हारी इच्छा है, तो फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं, कुछ संकोच मात्र है, शायद पुराने संस्कार मेरे रास्ते का रोड़ा बन रहे हैं।

भाभी : मैं कौन सी उदार विचारों की हूँ ?

भाई साहब : तुम्हारे अध्ययन ने तुम्हें समय के साथ रखा है, पर मेरा कारोबार मुझे और भी पीछे ले गया है। किन्तु इससे क्या ? पिता क्या पुत्रों के सुख के लिए अपने विचारों का गला नहीं घोंट देते, अपने सिद्धांतों को नहीं त्याग देते ? (गला कुछ आर्द्र हो जाता है।) रघु मुझे क्या पुत्र से कम प्रिय है ?

भाभी : यही तो मैं भी कहती हूँ। (लम्बी सांस लेती है।) तीन वर्ष का था, जब माँ जी परलोक सिधार गई थीं। तब से इसे अपने लड़के की भाँति हमने पाला है। श्रद्धा वह हमसे रखता है, आप कहेंगे तो वह रद्धा से विवाह भी कर लेगा, पर आयुपर्य्यन्त जलता-भुनता रहेगा।

भाई साहब : मैं तो तुम्हारे ही विचार से कहता था। विमला पर तो तुम्हारा शासन चलता था। आँख बन्द करके वह तुम्हारी आज्ञा मान लेती थी। और फिर जब वह पढ़-लिख गई तब भी उसका स्वभाव नहीं बदला। आज्ञाकारिणी वह वैसी की वैसी ही रही। ये आधुनिक युग की शिक्षित लड़कियाँ तुम्हारी हर उचित अनुचित बात मानेंगीं, इस आशा से हाथ धो रखो।

भाभी : (गर्व से) मैं रघु की माँ नहीं, उसकी भावज हूँ। इतनी स्वार्थपरता मुझमें नहीं कि अपने आराम के निमित्त उसके जीवन को सदैव के लिए कटु बना दूँ।

भाई साहब : (चुप)

भाभी : देखिए, मुझे तो प्रो० राजलाल की लड़की पसन्द है। उसके रूप-लावण्य के आगे रत्ना बेचारी क्या ठहरेगी ?

भाई साहब : (चुप)

भाभी : और फिर वह ग्रेजुएट है और अपने विषय में सदैव अच्छे नम्बरों पर पास हुई है।

भाई साहब : (चुप)

भाभी : और गाना बजाना वह जानती है। नृत्य भी बंगाल के एक प्रसिद्ध कलाकार से वह सीख रही है। और यही सब तो रघु चाहता है।

भाई साहब : (जैसे अपना समर्थक ढूँढते हुए) रामप्रसाद की क्या राय है ?

भाभी : रामप्रसाद, (हँसती है।) उससे अगर कोई कहे, तो आँखें बन्द करके वेदी पर जा बैठे !

भाई साहब : (ठहाका मार कर हँस पडते हैं।) मुँह बाये मक्खी नहीं पड़ती।

(रामप्रसाद प्रवेश करता है।)

रामप्रसाद : आप मेरा अपमान करते हैं, मुझसे यदि कोई कहे तो साफ़ इनकार कर दूँ।

भाभी : तो तुम्हें इसकी भी आशा है कि तुम्हें कोई कहेगा !

[रामप्रसाद पहले तो खिसियाना हो जाता है, फिर एकदम ठहाका मार कर हँस पड़ता है, उसके साथ ही भाई साहब और भाभी भी हँसते हैं।]

भाई साहब : आख़िर तुम्हारी सम्मति क्या है ?

रामप्रसाद : (तनिक खिसियानेपन के साथ) मुझे तो विवाह करना नहीं, इस लिये मेरी राय कोई महत्त्व नहीं रखती, पर मेरा विचार है, रघु उसे पसन्द करेंगे। आज जो कंसर्ट हो रही है (घड़ी की ओर देखकर) या अब तक हो चुकी होगी, उसमें उमा भाग ले रही है। और रघु भी शायद उसे देखने गये हैं।

भाई साहब : तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

रामप्रसाद : बहन के कहने से मैं उन्हें अशोक के घर देखने गया था, वहाँ से मालूम हुआ, राजेन्द्र के घर गये हैं। वहाँ गया तो पता चला कि वे शायद आज कंसर्ट देखने जायेंगे। (फिर घड़ी की ओर देखता है।) और शायद अब वह समाप्त ही हो चुकी हो। ७ से ९ तक का समय था।

[बिरजू सुप्त-प्राय बच्चे को कंधे से लगाये आता है।]

बिरजू : यह वहाँ रसोईघर में ही बैठा-बैठा सो रहा था।

भाभी : वहाँ चारपाई पर लिटा दे इसे, और जा जल्दी-जल्दी सब काम समाप्त कर डाल !

बिरजू : छोटे बाबू का खाना...

भाभी : वह आ ही रहा होगा। अलग रख छोड़ और चूल्हे में कोयले गर्म रहने दे।

(नौकर चला जाता है।)

रामप्रसाद : उमा कलाकार तो अव्वल दर्जे की है। सुशिक्षित है और सुसंस्कृत भी। प्रोफेसर राजलाल की लड़की है और यही सब कुछ भाई रघु चाहते हैं !

भाई साहब : (अचानक गम्भीर होकर) पर हमारे घर की एकता उसके आने से स्थिर न रह सकेगी। दुर्बल तिनके की भाँति वह उसे उड़ाये लिये फिरेगी।

भाभी : किन्तु सब शिक्षित बुरी और अशिक्षित अच्छी नहीं होतीं ! लाडो, बताइए, कै श्रेणी तक पढ़ी है ? आते ही दो दो के चार-चार कर दिये।

भाई साहब : शिक्षा को मैं इतना बुरा नहीं कहता, तुमने घर में इतना पढ़ा है, मैंने तुम्हें नहीं रोका, पर कालेज की इन अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों से डर लगता है।

भाभी : और मैं कहती हूँ कम पढ़ी लड़कियों से डरना चाहिए, जो लड़की अधिक पढ़ जाती हैं, जीवन की वास्तविकता उसके सामने खुल जाती है। वह जीवन को और भी गहरी नज़र से देखना सीख जाती है। बाह्य-संसार का उसे अधिक पता हो जाता है, समय आने पर वह जीवन के युद्ध में पति पर बोझ न बन कर, उसके साथ सब विपत्तियाँ जूझ सकती है। और यह 'न तीतर न बटेर' किस्म की लड़कियाँ थोड़ा पढ़ कर ही अपने आपको बहुत कुछ समझने लग जाती हैं। रही एकता की बात, तो मैं कहती हूँ, हमें इतना स्वार्थप्रिय न होना चाहिए। हमने उसे पाला है, पढ़ाया-लिखाया है, अपना कर्तव्य समझ कर ! अब उसका बदला हम क्यों चाहें ? यदि वह आपका भाई न होता तो क्या आप उसे पढ़ाते ? और क्या मैं ही इस प्रकार उसका लालन-पालन करती ?

भाई साहब : (चुप !)

भाभी : परमात्मा ने हमें सब कुछ दिया है। वे अलग होना

चाहें, अपने घर प्रसन्न रहें। एकता अच्छी है, पर स्वजन की आत्मा को बन्दी बना कर उसे प्रा करना अच्छा नहीं !

भाई साहब : (हथियार डालते हुए हँस कर) मैं तुमसे कब जीत सका हूँ। तुम उसके साथ भी पटा लोगी।

(हँसते हैं।)

भाभी : तो देखिए, यदि प्रोफेसर साहब आयें—उनकी पत्नी ने कहा था मैं उन्हें आज ही रात को भेजूँगी, और अब न आये तो कल सुबह अवश्य आयेंगे—आप कृपा करके इतना करें कि उनके सामने कहीं पढ़ी-लिखी लड़कियों की निन्दा न शुरू कर दें, और आधुनिक शिक्षा और उसके दोषों पर भाषण न झाड़ने लगें !

भाई साहब : (मात्र हँसते हैं।)

भाभी : रघु को उन्होंने देखा है। शायद उमा ने भी देखा हो। कुछ भी हो वह उन्हें पसन्द है, हो सकता है रघु ने भी उमा को देखा हो, न देखा हो तो मैं दिखा दूंगी, और यह मेरे जिम्मे रहा कि वह मान जायेगा, (धीरे से) मान जायेगा, (हँसती है।) वह आयु पर्यन्त मेरा आभारी रहेगा (फिर हँसती है।) और यदि वे शगुन लेने को कहें तो आप इनकार न कीजिएगा। आप यही कहिएगा कि हमें कोई आपत्ति नहीं, यदि रघु को स्वीकार है तो हमें भी स्वीकार है।

[दूर, बाहर डेवढ़ी से घंटी बजने की आवाज़ आती है]

भाभी : और मैं फिर आप से कहती हूँ कि बस्ती वालों से ये रिश्तेदार बहुत अच्छे हैं। प्रतिष्ठित, सभ्य और संस्कृत और फिर वैसे भी बुरे नहीं। प्रोफेसर साहब पाँच सौ रुपया वेतन पाते हैं। मैं अब रघु का उन लँडोरों के यहाँ विवाह नहीं करना चाहती, जिनके न घर है न घाट; जो न आए-गए को बिठा सकते हैं, न खाने-पीने को पूछ सकते हैं।

(बिरजू प्रवेश करता है)

बिरजू : बाबू जी, बाहर आपको कोई बुला रहे हैं।

भाई साहब : कौन है, नाम नहीं पूछा ?

बिरजू : जी कोई प्रोफेसर साहब हैं।

भाभी : (उल्लास-भरी जल्दी से) प्रोफेसर राजलाल ही होंगे, जाइए आप जाकर लिवा लाइये।

भाई साहब : तुम जरा ठीक से बैठो, मैं जाकर लाता हूँ।

भाभी : (राम प्रसाद से) तुम इधर कुर्सी पर आ बैठो (बिरजू से) उस कुर्सी को इधर कर दो बिरजू और वह पर्दा ठीक कर दो। मैं चाहती हूँ राम प्रसाद, कि घर तो अच्छा हो; कोई जाय तो बैठने को जगह मिले; बातें तो कोई कर सके। तुमने देखा नहीं प्रोफेसर साहब की पत्नी कितनी सुसंस्कृत हैं। बोलती हैं तो जैसे फूल तोलती हैं। यह नहीं कि बैठो पीछे और ताने पहले सुनो। रघु की पहली सास को तो तुम जानते हो।

राम प्रसाद : पर अब तो वह मर गई बेचारी।

भाभी : घर तो वही है। और फिर राम प्रसाद, संसार में कौन लाभ का सौदा नहीं करना चाहता ? बाज़ार में आदमी दो पैसे का मिट्टी का बर्तन लेने जाय तो चार

जगह पूछता है; दस बार ठोंक-बजा कर देखता है। फिर जीवन के इस सब से बड़े सौदे में क्यों इतनी उदासीनता से काम लिया जाय? अब अच्छा रिश्ता मिलता है तो क्यों छोड़ा जाय? (धीरे से भेद-भरे स्वर में) और फिर प्रोफेसर साहब की पत्नी ने कहा था कि हज़ार रुपया वे दहेज के अतिरिक्त रखेंगे।

भाई साहब : (आँगन में ही) प्रोफेसर राजलाल आये हैं। (फिर अपने पीछे आते हुए प्रोफेसर साहब से) आइए प्रोफेसर साहब!

[दूसरे क्षण भाई साहब के पीछे प्रोफेसर राजलाल और उनकी पत्नी प्रवेश करते है।

प्रोफेसर साहब अधेड़ आयु के व्यक्ति हैं। एक सुरुचि-पूर्ण सूफियाना सूट पहने है। पर सिर पर उनके पगड़ी है—वे उन पुराने लोगों में से हैं, जिनके संस्कार तो पुराने ही हैं, पर आधुनिक शिक्षा और विचार-स्वातन्त्र्य से, जो इतने सहिष्णु हो गये हैं कि बहुत सी बातों के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ चुके हैं, और जो हर प्रकार के विचारों को अविकृत भाव से सुन लेते हैं और घर के प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने विचारों के अनुसार चलने देते है।

प्रोफेसराइन सौम्य तथा गम्भीर महिला हैं, जो वस्त्रों और उनके चुनाव में सुरुचि से काम लेना जानती हैं। छिछोरापन, जो विपन्न से अचानक सम्पन्न हो जाने वाले लोगों की वेष-भूषा, चाल-ढाल और बात-चीत से प्रकट हुआ करता है, उनमें नाम को नहीं। आयु यथेष्ट है, पर सुन्दरता अब भी वैसी ही बनी हुई है और मुस्कराती हैं तो अब भी, ऐसा मालूम होता है जैसे कोई फूल सोया-सोया मुस्करा दिया हो।

भाभी तथा रामप्रसाद खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं।]

भाई साहब : (पत्नी की ओर संकेत करते हुए प्रोफेसर साहब से) मेरी सहधर्मिणी ! (रामप्रसाद की ओर इशारा करके) इनके भाई !!

[सब परस्पर अभिवादन करते हैं, भाभी और प्रोफेसराइन एक दूसरे को देख कर मुस्कराती हैं।]

भाई साहब : (कुर्सियों की ओर संकेत करके) आइए पधारिए !

(सब अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।)

भाभी : (हँस कर प्रोफेसराइन से) रघु तो अभी नहीं आया। आज इतवार था, सुबह ही का गया हुआ है, शायद आ ही रहा हो।

(दोनो ज़रा हँसती हैं।)

भाभी : (भाई साहब की ओर संकेत करते हुए) इनसे मैंने कह दिया है (हँसती है।) और इन्होंने स्वीकार भी कर लिया है, मुझे तो उमा पसन्द है।

फेसर साहब : (हर्ष से) आज हिसार के अकाल-पीड़ितों के लिए एस० आर० सोसाइटी की ओर से जो कंसर्ट हुई, उसमें उमा ने भी भाग लिया था, आप शायद गये नहीं ?

भाई साहब : (दीर्घ निश्वास को दबाकर) कारोबारी आदमियों के भाग्य में यह सब कहां ? महीने में एक दिन छुट्टी होती है और घर के बीसियों काम.....

प्रो० साहब : (हँसते हुए विनम्र अभिमान से) उमा ने 'मणिपुरी' नृत्य का जो नमूना दिखाया, उसे दर्शकों ने बेहद पसन्द किया।

भाभी : बस, हमारा रघु भी ऐसी ही संगिनी चाहता है (भाई साहब की ओर देख कर हँसते हुए) क्यों जी, रसोयिन या दर्जन वह नहीं चाहता !

[भाई साहब के अतिरिक्त सब हँसते हैं, भाभी सशंक नेत्रोंसे उनकी ओर देखती है ।]

भाई साहब : (उपेक्षा से—भूल कर कि भाभी ने उनसे क्या प्रार्थना की थी) पढ़ी लिखी लड़कियों को.....

भाभी : (भांप कर जल्दी से) यह खुद पसन्द करते हैं । (हँसती हैं ।) अनपढ़ का जीवन भी कोई जीवन है, कुएँ के मेढक की तरह अपने ही संसार में मस्त !

(ज़रा जोर से हँसती है ।)

भाई साहब : (जो अब भी नहीं समझे, उसी उपेक्षा के स्वर में) ये कालेज की लड़कियाँ.....

भाभी : (हँस कर) उनसे हजार दर्जे अच्छी ही तो हैं। (फिर निमिष मात्र के लिए भाई साहब की ओर देख कर, कि अब आप को बात का अवसर न मिलेगा ।) घर में यदि मुझ जैसी ने रो-पीटकर समाचार-पत्रादि पढ़ना सीख भी लिया तो इससे क्या होता है । भारत दिन-प्रति-दिन उन्नति के पद पर अग्रसर है । आप की उमा से बातें करके तो मेरा हृदय गद्‌गद हो गया । प्रत्येक विषय पर वह किस सुगमता से बात-चीत कर सकती है । मैं सोचती हूँ, वह आ जायगी तो मैं भी उससे कुछ सीख सकूँगी ।

प्रोफेसराइन : (विनम्र मुस्कान से) नहीं जी कालेज का ज्ञान छिछला होता है, गहराई तो जीवन के वास्तविक अनुभव ही उसे प्रदान करते हैं । उसे अभी बहुत कुछ आप के चरणों में बैठ कर सीखना होगा ।

[बिजली की बत्तियाँ कुछ क्षण के लिए मद्धम हो जाती हैं।]

प्रो० साहब : (चौंक कर और घड़ी की ओर देख कर) ओह ! ९ बज गए। काफी देर हो गई (हँसते है।) आप को भी आराम करना होगा। बात यह है कि कल मैं बाहर जा रहा हूँ, और मैं इस ओर से निश्चिन्त हो जाना चाहता था।

[जेब से पौंड निकाल कर अपनी पत्नी को देते हैं, वह भाभी की ओर बढ़ाती हैं।]

— : ये स्वीकार कीजिए !

भाई साहब : (चौंक कर) यह पौंड...!

प्रो० साहब : यदि आप को कोई आपत्ति न हो.....

भाभी : (पौंड लेते हुए) हम तो इसे अपना सौभाग्य समझेंगे। हाँ, यदि रघु आ जाता तो अच्छा था, वैसे हम राजी हैं।

प्रो० साहब : उन्हें हम मना लेंगे।

भाई साहब : (असहज होकर) पर यह तो कुनेत * का महीना है।

प्रो० साहब : (हँसते है।) किन्तु हम शगुन तो नहीं दे रहे, वह सब तो बाद में यथाविधि होगा। यह तो समझ लीजिए कि लड़का हमारा हो गया।

भाभी : (हँसती है।) वह कहां जा रहा है, वह तो आप ही का है।

प्रो० साहब : अच्छा तो हमें आज्ञा दीजिए। (उठते है।) परमात्मा करे हम दिन प्रतिदिन एक दूसरे के अधिक समीप होते जायँ !

(चलते हैं। भाई साहब भी साथ चलते हैं।)

---

*कुनेत के महीने में कोई शुभ कार्य्य आरम्भ नहीं करते हैं।

प्रो० साहब : नहीं, नहीं आप बैठिए।

[भाई साहब केवल हँसते और उन्हें छोड़ने जाते हैं। भाभी बिजली के प्रकाश में चमकते हुए उस पौंड को देखती हैं और उनकी आंखें अधिक से अधिक खुलती जाती हैं। और उनमें एक विशेष चमक आती जाती है। जैसे उस पौंड के स्वर्ण-पट पर वे अपने देवर और उस कान्तकामिनी उमा का विवाह देखती हैं, और उस दहेज को सहेजती हैं जो विवाह में आया है, और जैसे सहस्र रुपयों की मधुर खन-खन का शब्द उनके श्रवणों में उल्लास उँडेल देता है]

रामप्रसाद : तो अब रघुनन्दन फँस गये।

(हँसता है।)

भाभी : (जैसे जग कर उसकी ओर देखती हैं। फिर हँस देती हैं।) अब कहाँ जायगा ?

[भाई साहब प्रोफेसर साहब को छोड़ कर वापस आते हैं।]

भाभी : मैं तो डर रही थी कि आप फिर भाषण देने लगे, देखिए, परमात्मा के लिए कुछ दिन अपनी जीभ को अपने बस में रखिए। मैं यह मानती हूँ कि आप को ये सब नये विचार पसन्द नहीं, आप इतनी बढ़ी हुई स्वतन्त्रता के भी समर्थक नहीं, पर शादी आप को तो उससे करनी नहीं, और रहा रघु, तो सुबह आपने उसके विचार सुन ही लिए थे, वह इसी में प्रसन्न है। और एक बात मैं आपको बता दूं, हम स्त्रियाँ अपने आपको पुरुषों के अनुसार ढाल लेना खूब जानती हैं।

भाई साहब : (हँसते हैं।) शायद तुम आधुनिक नारी से अभिज्ञ

नहीं हो, पहले अवश्य स्त्रियाँ पुरुषों के अनुसार अपने आप को ढाला करती थीं, पर अब तो पुरुष ही स्त्री के अनुसार अपने आप को ढालते हैं।

(फिर हँसते हैं। रामप्रसाद अँगड़ाई लेकर उठता है।)

भाभी : रामप्रसाद बैठो अभी, नींद तो अब जल्दी आयगी नहीं, आओ भाई एक दो बाजियां ताश ही खेलें, तब तक रघु भी आ जायगा।

(रामप्रसाद ताश उठाता है।)

भाई साहब : हटाओ जी मैं सोऊँगा।

भाभी : आपको मेरी सौगन्ध.....

भाई साहब : (कुर्सी पर बैठते हुए) अच्छा भाई लाओ। (पत्ते फेंटते हुए) देखो मैं अपने आपको तुम्हारे अनुसार ढाल रहा हूँ या नहीं।

(सब हँसते है।)

परिवर्तन

तीसरा दृश्य

[कंसर्ट समाप्त हो चुकी है। एक तो बेचारे अकाल-पीड़ितों की सहायता करने की प्रबल-भावना और दूसरे उच्च-श्रेणी के कलाकारों को स्टेज पर देखने की उत्कट-लालसा—इस लिए वह काफी सफल हुई है। बाहर, हाल में दर्शक अभी तक कुमारी उमा और श्रीमती राजेन्द्र को स्वयं इस सफलता पर बधाई देने के लिये खड़े हैं। पर वे ग्रीन-रूम (स्टेज का पिछला कमरा) में कपड़े बदल रही हैं। इसलिए सभा के मन्त्री मिस्टर शर्मा बड़ी विपत्ति में फँसे हुए हैं। बहुत से दर्शकों से उन्होंने स्वयं गुलदस्ते ले लिये हैं। और उन्हें वचन दे दिया है कि वे उनको पहुँचा दिये जायँगे, पर कुछ ऐसे भी हैं, जो स्वयं मिल कर ही उन्हें बधाई देना चाहते हैं। चूँकि श्रीमती राजेन्द्र का नृत्य बहुत सफल रहा हैं, इसलिए रघु भी जाकर फूलों का एक गुलदस्ता खरीद लाया है और उसने मन्त्री पर ज़ोर दिया है कि वह कमरे के दरवाजे पर दस्तक देकर पता लगाये कि कपड़े बदलने से उन्हें अवकाश मिला है या नहीं।

जिस समय मन्त्री दरवाज़े पर दस्तक देता है, उसी समय पर्दा उठता है। और ग्रीन-रूम में कुमारी उमा, जो कपड़े बदल चुकी है, एक पाँव कुर्सी पर रख कर अपनी गुरगाबी के तस्मे बाँधती दिखाई देती है।

यह कमरा कुछ छोटा है, और बिजली की बत्ती भी यहाँ एक ही है। बहुत सामान इस कमरे में पड़ा है।

सामने एक बड़ी आलमारी है, जिसके पट खुले है। और उसके बड़े-बड़े ख़ानों में विभिन्न प्रकार के वस्त्र तथा दूसरा सामान पड़ा है। दायीं ओर कोने में एक बड़ा क़द-आदम शीशा रखा है। उसके समीप ही बायीं दीवार में शृंगार की मेज़ है, जिसके चौखटे में एक छोटा सा शीशा लगा है। इस पर पाउडर, क्रीम, बिंदी और शृंगार का दूसरा सामान पड़ा है। खूंटियों पर कपड़े टंगे हैं। बायीं दीवार के साथ कुछ संदूक तथा ट्रंक रखे हैं। कमरे में कुछ कुर्सियाँ बिखरी पड़ी हैं। एक-दो पर बेतरतीबी से कपड़े पड़े हैं। फर्श पर एक दरी बिछी है, जिसमें बीसियों सिलवटें हैं।

दरवाजे दो हैं। एक बायीं दीवार में इस ओर के कोने पर और दूसरा सामने की दीवार के दायें कोने पर। बायीं ओर का दरवाज़ा रंग-मंच की ओर खुलता है और सामने का एक दूसरे कमरे को जाता है। कुछ क्षण के बाद टिक-टिक की आवाज़ सुनाई देती है।]

उमा : (बारीक और तीखी आवाज़) आ जाइए !

(मि० शर्मा कुछ गुलदस्ते लिये प्रवेश करते हैं।)

शर्मा : (हँसते हुए) हमारी सब कंसर्टों से यह सफल रही, बाहर लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बहुतों से मैंने गुलदस्ते ले लिये—कालेज के लड़के, (हँसता है।) पर कुछ आप लोगों के परिचित भी हैं। (फिर हँस कर) कपड़े बदल लिए आपने ? मिसेज़ राजेन्द्र कहाँ हैं ?

उमा : (मादक मुस्कान के साथ) अन्दर कपड़े बदलने गई हैं ?

शर्मा : मैं आप लोगों का अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे तो डर था, कि खर्च भी न निकलेगा। आज तीन सिनेमाओं में सफल चित्रपट चल रहे हैं किन्तु परमात्मा ने लाज

रख ली। आप लोगों की कृपा से खर्च निकल जायगा और दो-एक सौ रुपया हिसार के...

उमा : कितने के टिकट बिके ?

शर्मा : लगभग आठ सौ के बिक ही गये।

उमा : (आश्चर्य से) तो केवल दो सौ उन...

शर्मा : इतना भी भेजा जा सके तो मैं समझता हूँ, बड़ी बात है। दो सौ रुपया तो हाल के किराये और स्टेज के निर्माण ही में खर्च हो गया। और फिर कुछ व्यवसायिक रागी आये हुए थे। उनको और उनके साज़िंदों को काफी रकम देनी पड़ी, फिर ताँगों, टिकटों और विज्ञापनों का खर्च (विवशता से) कोई एक मुसीबत हो तो बताऊँ। (हँसता है।) यह भी सब आप लोगों की कृपा से हो गया (फिर हँस कर और बात का रुख पलट कर) आज श्रीमती राजेन्द्र ने तो कमाल कर दिया।

[श्रीमती राजेन्द्र एक बाजू में नृत्य के कपड़े लटकाये और दूसरे से साड़ी का पल्ला सँवारती हुई अन्दर के कमरे से प्रवेश करती हैं।]

शर्मा : (हँस कर) मैं यही कह रहा था कि आज तो आपने कमाल कर दिया।

श्रीमती राजे० : (कपड़ों को कुर्सी की पीठ पर रखकर, बड़े शीशे के सामने जाते हुए) मैं तो अभी इस कला के क, ख से भी परिचित नहीं हुई।

शर्मा : यह तो आप जनता से पूछिए !

उमा : जो स्टेज से भाभी को जाने ही न देती थी।

(हँसती है, मादक हँसी ?)

शर्मा : और इन गुलदस्तों से पूछिए। (हँस कर) मैं यह कहने आया था कि बाहर अंग्रेजी दैनिक 'आज' के स० सम्पादक मि० रघुनन्दन आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने उनसे कहा भी कि लाइए गुलदस्ता मुझे ही दे दीजिये। पर कहने लगे इस सफलता पर मैं स्वयं उन्हें जाकर बधाई दूंगा।

श्रीमती राजे० : मि० रघु.....

शर्मा जी मैंने तो कहा था.....

श्रीमती राजे० : आप उन्हें इधर ही भेज दीजिए।

[शर्मा चले जाते हैं। श्रीमती राजेन्द्र शृंगार की मेज़ पर जाकर बाल बनाती हैं और बूट के तस्मे बांध कर और साड़ी ठीक करके कुमारी उमा भी बड़े शीशे के सामने जाती हैं। मि० शर्मा के जाने के बाद जो सम्भाषण होता है, उसमें वे साथ साथ अपना शृंगार भी किये जाती हैं।]

उमा : (बड़े शीशे के पास से, बाल बनाते हुए कनखियों से देख कर) मि० रघु को आप जानती हैं ?

श्रीमती राजे० : बहुत अच्छी तरह !

उमा : देर से परिचय है आपका ?

श्रीमती राजे० : देर से तो नहीं। प्रोफेसर साहब के लेख तो तुमने देखे होंगे, इनके पत्र में देर से निकलते हैं, ये वहाँ कुछ ही दिनों से आये हैं। साहित्य का विभाग इन्हें ही सौंपा गया है। तभी से उनकी और इनकी मैत्री हो गई है।

उमा : कैसे आदमी हैं ?

श्रीमती राजे० : (तनिक मुस्करा कर) क्या मतलब है तुम्हारा ?

उमा : कैसे विचार रखते हैं, उदार या अनुदार ?

श्रीमती राजे० : किस मामले में, इनका पत्र तो समय का साथ देता है, न उदार न अनुदार.....

उमा : ओ भाभी ! मैं पूछती हूँ शादी-विवाह के मामले में !

श्रीमती राजे० : (सशंक नेत्रों से मुस्करा कर) क्यों !

उमा : यों ही पूछा।

(शोफर प्रवेश करता है।)

शोफर : बीबी जी कितनी देर में चलेंगी।

उमा : अभी चलती हूँ, पिता जी कहां हैं ?

शोफर : वे तो बीच ही में उठ कर चले गये थे।

उमा : और मां जी ?

शोफर : वे भी उनके साथ गई हैं।

उमा : तो चल मैं आती हूँ, भाभी जरा तैयार हो लें।

(शोफर चला जाता है।)

उमा : आज घर में माँ जी कुछ इनका ज़िक्र कर रही थीं, शायद इनकी माँ आई थीं।

श्रीमती राजे० : इनकी माँ नहीं हैं, भाभी हैं।

उमा : तो भाभी ही होंगी। वे तो बड़ी उदार विचारों की मालूम होती हैं, मुझे खूब पसन्द आईं।

श्रीमती राजे० : (कृत्रिम अनभिज्ञता से) क्या करने आई थीं !

उमा : (लजा कर) अब तुम तो भाभी.....

(अंगड़ाई लेती है।)

श्रीमती राजे० : अच्छा यह बात है, तो आदमी खु बुरा नहीं। विचार कैसे रखता है, मैं नहीं जानती, पर है मिलनसार, हँसमुख, अंग्रेजी दैनिक.....

उमा : वह सब मैं जानती हूँ।

शोफर=मोटर चलाने वाला।

श्रीमती राजे० : तो वह आ तो रहा है, पसन्द कर लेना (हँसती है।) और बातों-बातों में उसके विचार भी जान लेना।

(दोनों हँसती है।)

(बाहर टिक टिक की आवाज़ सुनाई देती है।)

श्रीमती राजे० : आइए!

[रघु नग्गत के फूलों का गुलदस्ता लिये दाखिल होता है।]

रघु : (हँसते हुए।) मैंने कहा, मैं भी भाभी को बधाई दे आऊँ। तुम ने भाभी इस कला में इतनी उन्नति प्राप्त कर ली है, मुझे मालूम न था।

[गुलदस्ता उसकी ओर बढ़ाता है। और तब उमा को देख कर सहसा गम्भीर हो जाता है।]

श्रीमती राजे० : (तनिक हँस कर) आप दोनों का परस्पर परिचय नहीं?—ओह! (हँसती हैं।) यह हैं मि० रघुनन्दन—अंग्रेजी 'आज' के स० सम्पादक और प्रसिद्ध पत्रकार और ये हैं मिस उमा, प्रो० राजलाल की सुपुत्री! बी० ए० में आप प्रथम श्रेणी में पास हुईं और नृत्य कला में तो.....

रघु : सुना तो पहले भी था, पर आज इनकी कला देखने का भी अवसर मिला। देख कर मैं मुग्ध हो गया। नमस्कार!

उमा : (तनिक सकुचाते और लजाते हुए) नमस्कार!!

(दोनों परस्पर अभिवादन करते हैं।)

श्रीमती राजे० : (मौजे डालने के लिये कुर्सी पर बैठते हुए) बैठ जाओ रघु, तुम भी बैठो उमा, खड़ी क्यों हो, थकी नहीं अभी?

[उमा सिर्फ हँसती है, रघु एक बार उसकी ओर देखता है, तभी बाहर टिक टिक की आवाज सुनाई देती है।]

श्रीमती राजे० : आइए !

[दरवाजा खुलता है और आगे-आगे श्रीमती अशोक, प्रसन्न, उत्फुल्ल और पीछे-पीछे मि० अशोक बच्ची को उठाये हुए प्रवेश करते हैं। चूँकि रघु की पीठ उनकी ओर है इस लिए वे बधाई देने के जोश में उसे नहीं पहचान पाते ।]

श्रीमती राजे० : (श्रीमती अशोक को देख कर) ओह, आप हैं ?

श्रीमती अ० : (उल्लास भरे स्वर में) हम ने कहा, हम भी आपको बधाई.....

[रघु मुड़ता है और अशोक से उसकी आँखें चार होती हैं।]

मि० अशोक : ओह ! मि० रघु भी हैं।

[श्रीमती अशोक चौंक पड़ती हैं और वाक्य अपना पूरा नहीं कर पातीं।]

रघु : नमस्ते भाभी !

श्रीमती अ० : (मरी हुई आवाज में) नमस्ते !

मि० अशोक : (पत्नी की सहायता को आते हुए) इनका तो स्वास्थ्य बेहद खराब था (खाँसते हैं।) रात सोई नहीं, सुबह भी सिर में दर्द था, पर मैंने कहा कि आज उमा और आप भाग ले रही हैं हींहीं...हींहीं...(हँसते हैं।)

उमा : भाभी, नमस्कार।

[अब श्रीमती अशोक केवल सिर के इशारे ही से अभिवादन का उत्तर देती हैं, इतनी शिथिलता महसूस कर रही हैं वे।]

मि० अशोक : और फिर मैंने कहा कि मन ही बहल जायगा। (एक खोखला ठहाका लगाते हैं।) रोग से बढ़ कर रोग तो रोग का ख्याल करते रहना है। (फिर हँसते हैं।) क्यों है न ? (समर्थन के लिए सब की ओर देखते हैं, पर

आँखें किसी से भी नहीं मिलाते, फिर जैसे अपने ही से, हँस कर) रोग को, जहाँ तक सम्भव हो, पास न आने दिया जाय, बस ! यही रोग की सब से बड़ी दवा है।

[फिर एक खोखला ठहाका लगाते हैं। गोद से लगी ऊषा रो पड़ती है।]

मि० अशोक : (पुचकारते हुए) पु...पु... (पत्नी की ओर देख कर) चलिए, अब यह रोने लगेगी और फिर मौसिम बदल रहा है और स्वास्थ्य आप का ठीक नहीं, और गरम कोट आप घर छोड़ आईं हैं। (खिसियानी हँसी हँसकर सब से) नमस्कार ! नमस्कार !! नमस्कार !!!

(हँसते हुए घबराये से चले जाते हैं)

श्रीमती राजे० : (उन्हें बाहर जाते निर्निमेष देखती हैं, फिर जैसे अपने आप) इन दोनों का वैवाहिक जीवन भी कैसा स्वर्ग है !

रघु : स्वर्ग !

(अनायास ठहाका लगा कर हँस देता है।)

उमा : मैं भाई अशोक को पसन्द करती हूँ। अपना जीवन उन्होंने अत्यन्त सुन्दर बना रखा है, कहीं क्रोध नहीं, झगड़ा नहीं, लड़ाई नहीं।

श्रीमती राजे० : (ओठों में, जैसे अपने से) उधर हमारे प्रोफेसर साहब हैं कि हर बात पर दर्शन.....

उमा : प्रोफेसर साहब तो भाभी, फिर अच्छे हैं, मैंने घर देखे हैं, जो नरक हैं, और उन नरकों के संचालक हैं पति महोदय, स्त्रियाँ बेचारी तो उनकी यातनाएँ सहने के लिए हैं। (व्यंग से हँसती है।) पर भाई अशोक ने तो अपना वैवाहिक जीवन आदर्श बना रखा है। तुमने भाभी इनकी नई पुस्तक नहीं पढ़ी—'स्वर्ग की झलक' !

रघु : (जो इस् बीच में आलोचक बन, उमा की ओर देखता रहा है।) आप उसमें दी गई युक्तियों से सहमत हैं ?

उमा : मैं उनके एक-एक शब्द से सहमत हूँ। पति पत्नी दो अलग-अलग हस्तियाँ हैं, न पति पत्नी.....

[रघु फिर एक व्यंग भरा ठहाका लगाता है। फिर जैसे व्यस्त होकर—]

रघु : अच्छा, भाभी नमस्कार !(उमा से) नमस्ते जी !

श्रीमती राजे० : कुछ क्षण तो ठहरो.....

रघु : (जाते जाते मुड़ कर) नहीं भाभी, सुबह का घर से निकला हुआ हूँ, और फिर कल से ड्यूटी दिन की है।

[फिर नमस्कार करके चला जाता है। दोनों उसे जाते देखती हैं। फिर श्रीमती राजेन्द्र जो मोजे और बूट पहन चुकी हैं, उठती है।]

उमा : (जो अभी तक उधर ही देख रही है।) भाभी यह तो विचित्र आदमी है।

पर्दा

चौथा दृश्य

[बहुत देर तक जागने का लाला गिरधारी लाल को अभ्यास नहीं। काम करते करते वैसे भी थक जाते हैं। इस लिए भाभी के जोर देने पर ही उन्होंने खेलना आरम्भ किया था और एक दो बाजियाँ जोश से खेलीं भी; फिर आलस्य उन पर छाने लगा; रह रह कर अँगड़ाइयाँ लेते और घड़ी की ओर देखते और बेगार टालने की तरह खेले जाते। पर्दा उठते समय वे एक लम्बी अँगडाई लेते दिखाई देते हैं। आँखों में उनकी नींद की मस्ती है, सहसा दूर—कहीं घड़ियाल में टन टन ग्यारह बजते हैं, साथ ही साथ उनकी दृष्टि अँगीठी पर रखे हुए टाईमपीस पर जाती है और ऊब कर, वे खेल के बीच ही में, पत्ते मेज़ पर फेंक देते हैं।]

भाभी : ऐं, ऐं, यह बाजी तो खेल लो।

भाई साहब : बस मुझे नींद आ रही है, वह तो जाने कहाँ चला गया है, (क्रोध से) दायित्वहीन ! चिन्ता नहीं कि...

भाभी : (जो शायद बाजी जीत रही हैं।) अच्छा, किन्तु हाथ के पत्ते तो.....

भाई साहब : हटाओ जी !

(बिरजू प्रवेश करता है।)

बिरजू : बाबू जी, रसोई घर तो धो दिया है, छोटे बाबू का खाना.....

भाई साहब : इस समय तक जैसे वह भूखा ही बैठा होगा, रख दे

उठा कर, फेंक देना सुबह बाजार में.....हूँ.....

(बेजारी से सिर हिलाते हैं।

भाभी : जा अब खड़ा क्या देख रहा है ?

[तभी रघु तेज तेज चलता आता है, और हैट मेज़ पर पटक कर जैसे सुख की सांस लेता है।]

भाभी : मैं कहती हूँ, यहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते थक गये। तुम क्या करते रहे सारा दिन?

रघु : (व्यंग से हँस कर) "स्वर्ग की झलक" देखता रहा।

भाई साहब : (जो शायद कंसर्ट को स्वर्ग की झलक समझे हैं, तनिक तीखे स्वर में) तुम तो स्वर्ग की झलक देखते रहे, पर घर वाले.....यदि वहाँ तुम्हें कंसर्ट देखनी थी तो कह तो जाते, खाना तुम्हारा पड़ा ठण्डा हो रहा है।

रघु : खाना मैं खा आया हूँ।

भाई साहब : (क्रोध से) वह तो मैं पहले ही कहता था। (जोर से चीख कर, बिरजू से) जा अब फेंक दे बाहर, कुत्तों को डाल दे, खड़ा क्या देख रहा है ?

(बिरजू चला जाता है।)

— : (बेजारी से सिर हिला कर) हूँ ! अपने दायित्व का ज़रा भी ख्याल नहीं।

भाभी : (पति से) आते ही आप क्या शोर मचाने लगे (रघु से हँसकर) हम तो बैठे हैं तुम्हें एक सुसमाचार सुनाने के लिए।

रघु : सुसमाचार ?

भाभी : बूझो भला ?

रघु : (कोट उतारते हुए हँस कर) मैं अगर ज्योतिषी होता...

भाभी : मुँह मीठा कराओ तो बताएँ।

[रघु केवल हँस कर कुर्सी पर बैठ जाता है, और बूट के तस्मे खोलने लगता है।]

भाई साहब : मैं तो यही चाहता था कि तुम वही रिश्ता करो, पर तुम्हारी भाभी, रामप्रसाद, तुम, बहुमत (हँस कर) मैं हारा, यद्यपि अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति को देख कर मैं तुम्हें खर्चीली ग्रेजूएट लड़की.....

रघु : (तस्मे खोल कर एक पाँव की सहायता से दूसरे पाँव का बूट उतारता हुआ) ग्रेजूएट लड़की !

भाई साहब : बात यह है कि मध्यवर्गीय आदमी के लिये अधिक पढ़ी-लिखी लड़की के साथ जीवन बिताना कठिन हो जाता है.....

रघु : लेकिन भाई साहब.....

भाई साहब : शिक्षा को मैं बुरा नहीं कहता, पर जिस प्रकार की शिक्षा आज कल लड़कियों को मिल रही है और उसका जो प्रभाव पड़ रहा है उसकी ओर से आँखें बन्द नहीं की जा सकतीं।

रघु : (मोजे उतारता हुआ,) लेकिन भाई साहिब.....

भाई साहब : (अपनी बातों के प्रवाह में) चाहिए तो यह कि अधिक पढ़ लिख कर आदमी और भी सीधा-साधा जीवन व्यतीत करना सीखे, जितना भरे, उतना ही भारी होता जाय, पर यहाँ तो लड़कियाँ जितना अधिक पढ़ती हैं, उतनी ही अधिक छिछली होती जाती हैं।

रघु : (उठ कर खड़े होते हुए) लेकिन भाई साहब.....

भाई साहब : (उसी प्रवाह के साथ) गहने वे चाहे पहले से कम पहनें पर उनके दूसरे खच इतने बढ़ जाते हैं कि बेचारे पति पर आफत आ जाती है। बहुत पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए, तो आई० सी० एस०, ई० ए०

सी०.....अस्सी सौ रुपया पाने वाले के साथ...

रघु : (जिसके संतोष का प्याला भर चुका है।) पर भाई साहब, यहाँ ग्रेजूएट लकड़ी की क्या बात है ?

भाई साहब : तुम्हारी भाभी तुम्हारी इच्छा के अनुसार एक ग्रेजूएट लड़की देख आई हैं ?

रघु : ग्रेजूएट !

(भाभी की ओर देखता है।)

भाभी : (अपने चुनाव की दाद चाहती हुई) बी० ए० में वह प्रथम श्रेणी में पास हुई है।

रघु : पर.....

भाभी : और गाने में उसे निपुणता प्राप्त है और नृत्य में...

रघु : नृत्य में.....!

(मुँह बाय रह जाता है।)

राम प्रसाद : नृत्य में तो पंजाब छोड़ बंगाल और महाराष्ट्र...

भाभी : (उल्लास से) बूझो कौन है ?

रघु : (जल कर) पर तुम्हें कहा किसने कि.....

भाभी : मैं कहती हूँ बस साधारण ग्रेजूएट नहीं, उत्कृष्ट कलाकार है।

रघु : (और भी चिढ़ कर) मैं कहता हूँ, यदि उत्कृष्ट से भी दो दर्जे ऊपर हो तो मुझे क्या ? आप लोगों ने मुझ से पूछा ?

भाभी : (तनिक क्रोध से) रघु !

रघु : (उदासीनता से) मैं किसी ग्रेजूएट से विवाह नहीं कर सकता।

भाई साहब : और इन्होंने तो शगुन भी ले लिया ?

रघु : (चीख कर) क्या शगुन भी ले लिया है ?

भाभी : मैं कहती हूँ देखोगे तो मेरे चुनाव की प्रशंसा करोगे।

रघु : (उसी स्वर में) मैं नहीं देखना चाहता।

भाभी : जो तुम चाहते हो, वह सब उस में है।

रघु : (उसी स्वर में) मैं क्या चाहता हूँ ?

भाभी : तुम जीवन-संगिनी चाहते थे।

रघु : (व्यंग से) संगिनी, जो मेरे बोझ को हल्का करे...कि उसे बढ़ा कर मेरी गर्दन तोड़ दे ! (हँसता है।)

भाभी : जो तुम्हारे साथ काम करे।

रघु : (व्यंग से) मेरे साथ काम चाहे न करे, पर मेरे काम के मार्ग में बाधा न बने।

भाभी : जो चार मित्र आ जायँ तो अन्दर न जा बैठे।

रघु : (उसी व्यंग से) जो चाहे अन्दर जा बैठे, पर पलक-झपकते बीमार न बन जाय।

(फिर हँसता है।)

भाभी : लेकिन तुम दर्जन या रसोयिन नहीं चाहते !

रघु : (ऊँचे) पर मैं संगिनि चाहता हूँ, तितली नहीं !

भाभी : मैं उमा की बात कर रही हूँ !

रघु : (एक व्यंग पूर्ण ठहाका लगाता है) उमा !—वह स्वर्ग के स्वप्न देखती है !

भाई साहब : (जो कुछ नहीं समझते) आखिर मतलब क्या है तुम्हारा ?

रघु : (गम्भीरता से) देखिए भाई साहब, इस वातावरण में पली, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने के लिए पुराने संस्कारों को सर्वथा त्याग देना पड़ता है

और दुर्भाग्य से मैं अभी ऐसा नहीं कर सका। जिस स्वर्ग की वे झलक देखती हैं, वह हम से भिन्न है।

भाई साहब : तो फिर तुम कहीं विवाह करोगे भी।

रघु : मैं रत्ना ही से विवाह करूँगा, न हागा घर पर आर पढ़ा लूँगा।

[धोती उठा कर अन्दर पतलून बदलने के लि चला जाता है।)

भाभी : (परेशान) और मैंने शगुन ले लिया है।

भाई साहब : (उल्लास को छिपाकर, सान्त्वना देते हुए) मैंने पहले ही कह दिया था कि यदि हम उत्तर को कहेंगे, तो वह ज़रूर दक्षिण को जायगा।

पर्दा

समाप्त

बरगद की बेटी

पद्य कथा

पंजाब के उन ऊसर इलाकों की प्रणय-गाथा, जिन्हों ने पजाबी कवियों को 'हीर राँझा' और 'ससी पुन्नू' जैसे, अमर काव्यों के सृजन की प्रेरणा दी, परन्तु 'बरगद की बेटी' प्रेम और विरह ही का रूमान नहीं। इसके गर्भ में हमारा सामाजिक,हम कहें कि वर्ग संघर्ष अपनी समस्त अपरूपता के साथ अन्तर्हित है।

हिन्दी के यशस्वी कथाकार श्री यशपाल ने उसकी भूमिका में लिखा है—

"लम्बी छन्दोबद्ध रचना प्रायः उद्वेगों और उच्छ्वासों की एक ऐसी लड़ी बन जाती है जो छोटे बड़े, गहरे फीके रंग के मनकों की माला के समान जान पड़ती है, परन्तु अश्क ने 'बरगद की बेटी' में जो तारतम्य बाँधा है, उसमें शिथिलता जान नहीं पड़ती। वह बरसाती पहाड़ी नाले की भाँति चाहे बहुत समय तक नहीं बहती, पर जब तक बहती है, सवेग बह जाती है—न उसमें क्लिष्ट-गूढ़ता के भँवर हैं, न अर्थ की दुर्बोधता और न शब्द-विन्यास की विषमता।"

'बरगद की बेटी' में काव्य के समस्त गुणों के साथ कहानी की-सी दिलचस्पी पाठक को मिलेगी और फिर श्री यशपाल की भूमिका पद्य कथा ही का मूल्यांकन नहीं करती, प्रगति शील साहित्य की गुत्थियों को सुलझाती हुई आलोचकों और पाठकों के समक्ष नये मान दंड भी रखती है।